संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ

लेखक—

भारत सन् ५७ के बाद, संसार के
महान् राष्ट्रनिर्माता आदि
पुस्तकों के रचयिता

श्रीयुत् शंकरलाल तिवारी 'बेढब' सागरी·

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स
बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण | मूल्य २॥)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स
बनारस

गोरी सरकार द्वारा जब्त
तीन पुस्तकें
४) भारत सन् ५७ के बाद
३।।) संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ
१।।।) बागी की बेटी

मुद्रक—
मकुन्द प्रेस,
बनारस सिटी

हमारी प्रकाशित

पुस्तकें

२।।) प्यासी आँखें
२) रोटी
२।।) संसार की भीषण राज्य क्रान्तियाँ
२) प्यासी तलवार
१॥) साहसी राजपूत
१॥) होटल में खून
१।।) राजकुमारी
१॥) गरीब
१।) बन्धन
१॥) मनकी पीर
१॥।) अमरसिंह राठौर
१।।) उजड़ा घर
१।।) पृथ्वीराज चौहान
१।।।) छत्रपती शिवाजी
२॥) झांसी की रानी
२॥) वीर दुर्गादास राठौर
१) अब्राहम लिंकन
२।।) दीपदान
२॥) खँड़हर
४) भारत सन् ५७ के बाद
२।) मनोरमा
२।) हाहाकार
१।) हरीसिंह नलवा
१॥।) बागी की बेटी

क्रांतियों का संदेश

"सभी राष्ट्रों को अपनी इच्छा के अनुसार शासन करने का पूरा अधिकार है। एक राष्ट्र की शासन-प्रणाली में दूसरा राष्ट्र कभी भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का यही तो मतलब है; और यही जन्मसिद्ध अधिकार है। हम देश के हैं और देश हमारा है। हम देश की संपत्ति
देश हमारी संपत्ति है। इस आधिपत्य की कीमत सबसे बड़ी है। प्रत्येक राष्ट्र को एक दूसरे की इज्जत करना चाहिये। किसी भी विदेशी राज्य को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे राष्ट्रों का फैसला करने के लिये स्वयं अधिपति बन बैठे! यदि कोई राजा अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है तो इन मामलों का सम्बन्ध केवल उसी राष्ट्र से है; किसी दूसरे को इसमें हस्तक्षेप करने का जरा भी अधिकार नहीं है।—

Law of Nations—

हर एक मुल्क का प्राणी अपने देश की संतान है। वह देश, जिसकी गोद में वह पला है, खेला है; और अपने अंतिम जीवन भर उसका जलवायु और अन्न लेकर अपने शरीर को सुख पहुँचाया है! इससे उस प्राणी की वही जन्म-भूमि और वही माता है।—माँ की गोद में खेलकर जिस तरह प्राणी बड़ा होता है, उसी तरह वह धरती-माता की गोद में खेल कर अपने जीवन को परम-पद पहुँचा देता है।—जीवन स्वतंत्र है। हमारे जीवन पर हमारा पूर्ण अधिकार है। इसी अधिकार को व्यवहार में लाने के लिये हमें अपनी ही सहानुभूति की आवश्यकता है। संसार में रहने के लिये हमें

कानून बना सकते हैं। हम अपने व्यावहारिक-जीवन के लिये हमीं जिम्मेवार हैं। यह अधिकार हम किसी दूसरे को नहीं देना चाहते। अगर हमसे कोई ये अधिकार छीनता है तो वह डाकू है।—

महात्मा-मैक्सविनी

जीवन के मानवीय सिद्धान्त पशुता से कुचले नहीं जा सकते। मानवता के लिये कानूनों की आवश्यकता नहीं, मानव-सिद्धान्त कानूनों पर निर्भर नहीं रहते। जहाँ मानवता पर कानूनों का कुठाराघात चलता हो, वहाँ पाशवता का सम्राज्य है। नास्तिकवाद इसे स्वीकार नहीं करता। कानून और फौजों की शक्ति से, बारूद और गोलों की ताकत से कोई भी राष्ट्र मानवीय-सभ्यता का विकास नहीं कर सकता। प्रत्येक राष्ट्र को वहीं की जनता ही विशेष रूप से संचालन कर सकती है। जनता नियम बना सकती है। जनता शैतानी कामों को रोकने के लिये पुलिस रख सकती है। लेकिन जब हमारे पास सब कुछ रहेगा, तब हमें न तो पुलिस की जरूरत होगी और न कानूनों की।— महात्मा-टाल्सटाय

जातियाँ जब कुचली जाती हैं; तब उनके जीवन में अमरता आती है। क्राँति-सूचक भावनाएँ उड़-उड़ कर उनके पास गूँजती हैं। उस समय उनमें सची मानवता का संचार होता है। निर्भीकता आपसे आप दौड़ी चली आती है। अपमान सहना भी अपनी मनुष्यता को नष्ट करना है। एक राष्ट्र जब दूसरे राष्ट्र को कुचलता है, एक जाति जब दूसरी जाति को हड़पने दौड़ती है, उस समय उस जाति में जीवन की एक नवीन ज्योति उदय हो जाती है।

अमेरिकनों ने सैकड़ों वर्ष काले नीग्रो लोगों को मिटा

देने में लगा दिये। हजारों निर्दोष नीग्रो कत्ल किये गए। जीवित जला दिये गए। जहाजों में भरकर बेचे गए; समुद्रों में डुबो दिये गए। लेकिन वह जाति आज भी जीवित है। क्रान्ति-देवी ने शीघ्र ही उनमें स्फूर्ति, सहन-शीलता और संजीवनी शक्ति का प्रवेश कराया। नीग्रो लोगों ने अपने को जब मनुष्य रूप में देखा, उन्हें मनुष्यता का ज्ञान हुआ और वे आप से आप स्वतंत्र हो गए।

(Speech of Das)

हम जिस जमीन में पैदा हुए हैं; वह हमारी। हमारी सम्पत्ति दूसरों के अधिकार में रहकर हमें उसके उपयोग से वंचित रक्खा जावे, ऐसी जबरदस्ती ईश्वरीय नियम के प्रतिकूल है। हर एक अपने अपने देश का प्रबन्ध करने का पूर्ण अधिकारी है। अमेरिका को इंग्लैण्ड वालों के प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं। हम अपने देश के लिये सभी प्रबन्ध कर सकते हैं। जब हमसे अपने देश का प्रबन्ध ठीक-ठीक न हो सकेगा, तब हम दूसरों का सहारा लेंगे। हम अपने स्कूलों में अपने देश की भाषा पढ़ायेंगे! हम अपने कालेजों में अपने देश का स्वतन्त्र साहित्य रक्खेंगे। हमें इस बात की जरूरत नहीं कि अमेरिका में इंग्लैण्ड का साहित्य पढ़ाया जावे। कौन कहता है कि अमेरिका का शासन अँग्रेजों के चले जाने के बाद बिगड़ जावेगा! जैसे अँग्रेज मनुष्य हैं, वैसे अमेरिकन भी मनुष्य हैं। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हमें शीघ्र ही अपने पैरों पर खड़े हो जाना चाहिए। हमें औपनिवेशिक-विधान की आवश्यकता नहीं है। किसी के अन्तर्गत रहकर जीवन व्यतीत करने की धारणा एक पालतू जानवर के समान रहना है।

जार्ज-वाशिंगटन

"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" क्रान्ति का यही संदेश है। जुल्म और गैर-इन्साफी के सामने नतमस्तक होना अपने आपको भूल जाना है। जिस देश में मनुष्य अपने को मनुष्य समझते हैं, वह देश कभी भी गुलाम नहीं रहा। भारत का ३० करोड़ जनसमुदाय अपनी मनुष्यता को खो बैठा। इतने विशाल जन-समुदाय का संचालन मुट्ठी भर अँग्रेज करते हैं।

"होमरूल" क्या है? भूला हुआ मनुष्य अपने सुगम पथ पर आ जावे। भूला हुआ देश अपना प्रबन्ध स्वयं करने लगे। घर हमारा है, उसकी सफाई,—दफाई और मरम्मत का भार हमीं पर होना चाहिए। घर में जो कुटुम्ब है, उसको नियमपूर्वक चलाने के लिये तमाम व्यवस्थाओं का भार हमीं पर हो।

एनीबीसेंट

प्रकृति के विधान में दासता नहीं है, जहाँ देखो वहीं शुद्ध-स्वतन्त्रता का वायुमण्डल है। समानता का भाव प्रकृति का नियम है। ईश्वर की सृष्टि में स्वच्छन्दता का प्राबल्य है। फिर किसी को क्या अधिकार है कि वह अपने लाभ के लिये दूसरों को बन्धन में रक्खे।

नेशनल-एसेम्बली फ्रांस

दो शब्द

साम्राज्यवाद का विस्तार

पृथ्वी का क्षेत्रफल ५ करोड़ २० लाख वर्गमील है; जिसमें ३ करोड़ ४० लाख वर्गमील, ६६% प्रतिशत हिस्सा साम्राज्यवादी राष्ट्रों के हाथ में है। बाकी १ करोड़ ८० लाख वर्गमील, अर्थात् ३४ प्रतिशत ऐसा है जो स्वाधीन कहा जा सकता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की आबादी २ अरब ७ करोड़ है। इसमें से १ अरब २० करोड़ मनुष्य, याने ५७ फीसदी साम्राज्यवादी राष्ट्रों की प्रजा हैं। बाकी ४३ फीसदी आजाद है, जिसकी तफसील सितम्बर सन् १९३६ ई० में श्रीयुत शीतलासहाय जी ने सरस्वती में प्रकाशित की थी।

साम्राज्य	क्षेत्रफल-वर्गमील	धरातल का भाग फीसदी	सम्पूर्ण पृथ्वी की आबादी का भाग फीसदी
ब्रिटेन	१,३०४२८९६	२५.२१	२३.९४
रूस	८२,४१९२१	१५.९९	८.
फ्रांस	४६,८९,४०७	८.९९	५.०९
अमेरिका	३७,३८,४३७	७.२३	६.६५
इटली	९,९२,९४४	१.९२	१.२७
बेलजियम	९,२९,७७५	१.८	.८५
जापान	७,२३,२९२	१.४०	६.२६

हॉलैण्ड	८,००,५६९	१.५५	३.३४
पुर्तगाल	८,४८,०६६	१.६४	.७६
साम्राज्याधीन	३,३९,६७,३०७	६५.६७	५७.०६
स्वतन्त्र	१,७७,७५,४६	३४.३३	४२.९५
	५,१७,४२,७६३	१००	१००

कुल पृथ्वी की आबादी—२,०७,३३,४४,२१८

साम्राज्याधीन— १,१८,३०,९३,८९७

स्वतन्त्र— १९,०२,५०,३२८

९ राष्ट्रों में जिनका अपना क्षेत्रफल धरातल का, केवल १४% प्रतिशत है और जिनकी आबादी मनुष्य-मात्र की आबादी का केवल २३% प्रतिशत है, ५७% प्रतिशत मनुष्यों पर और ६७% प्रतिशत धरातल पर राज्य कर रही है। अगर रूप और अमेरिका को हम इस समूह से निकाल दें तो पता चलता है कि सात राष्ट्र जिनकी आबादी मनुष्य मात्र की आबादी का ११% है और जिनके देशों का क्षेत्रफल १$\frac{3}{8}$% है, ४२% पृथ्वी मंडल पर शासन कर रही है।

इंगलैंड जिसका क्षेत्रफल ९४,७२८ वर्गमील है; १,३३,५५०० वर्गमील के साम्राज्य पर अर्थात् अपने से १२९गुने भू भाग पर शासन करता है, केवल अफ्रीका में ही मिश्र और दक्षिण अफ्रिका को छोड़कर उसके पास २२ प्रदेश हैं। फ्रांस का साम्राज्य उसके क्षेत्रफल से २२ गुना बड़ा है। उसकी अपनी आबादी केवल ४ करोड़ २० लाख है, लेकिन उसका शासन १० करोड़ २० लाख ७५ हजार आदमियों पर है।

नन्हा-सा बेलजियम अपने से ८३ गुने साम्राज्य का मालिक है। वर्तमान अबीसीनिया युद्ध के पहिले इटली का साम्राज्य उसकी मातृभूमि से केवल ८ गुना बड़ा था। अब दस गुना बड़ा हो गया।

उपरोक्त तफसील से यह भलीभाँति विदित हो गया, कि राष्ट्रों में साम्राज्य-पिपासा की आग किस तरह जल रही है। यूरोप के सभी राष्ट्र साम्राज्यवादी हैं, यद्यपि कोई कोई प्रजातन्त्र भी हैं, किन्तु उनकी राजनीति साम्राज्यवादी है। राजनीतिज्ञ शास्त्रियों ने विशेष महत्व, फ्रांस, जापान और अमेरिका को ही दिया है। पृथ्वी का बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं शक्तियों के आधीन है। भूमण्डल के एक बड़े भाग पर ब्रिटेन का साम्राज्य है। यदि हम भारत, अस्ट्रेलिया और अफ्रिका को ब्रिटेन के साम्राज्य से अलग किये देते हैं, तो संसार में ब्रिटेन की शक्ति उतनी ही रह जाती है, जितनी कि बेलजियम की है।

पृथ्वी पर जितनी भी क्रान्तियाँ उठीं, जितने भी महा-भयंकर युद्ध हुए और अब भी जो राजनैतिक अभिनय हो रहे हैं, उनका एक ही उद्देश्य साम्राज्यवाद का विस्तार है।

गुलाम-अफ्रिका

भूमंडल के भूभागों में गुलामी के लिये अफ्रिका प्रसिद्ध है। संसार की राजनैतिक और सभ्य जातियों ने अफ्रिका को मनुष्य-तत्व से अलग रख दिया। राजनीति के न्याया-धीशों ने उसे स्वाधीनता के अयोग्य करार दिया। अबी-सीनिया के इस महापरिवर्तन से उसकी दशा और भी बिगड़ गई। इस १ करोड़ १५ लाख वर्गमील के विशाल

महाद्वीप का, ४० हजार वर्गमील का साईबेरिया का हिस्सा ही केवल स्वतन्त्र है। बाकी सब साम्राज्यवाद के आधीन हैं। आशावादी यह कहने लगे कि अफ्रिका की काली कौम की जिन्दगी खत्म हो गई। हब्श देश-नरेश हेल सिलासी के पतन के बाद समूचे अफ्रिका का पतन हो गया। यह हाल सिर्फ अफ्रिका का ही नही लेकिन उन राष्ट्रों का भी समझना चाहिये, जिन्होंने अपनी शक्तियों को समय के अनुकूल नही बनाया। अफ्रिका इस समय पाँच राष्ट्रों का शिकार है। ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, पुर्तगाल और इटली का पञ्जा उसके सिर पर है। इनमें ब्रिटिश-साम्राज्य का विस्तार ५० लाख वर्गमील है। ब्रिटेन ने अपना साम्राज्य प्रायः हर एक देश में फैलाया है। सिर्फ वेचुआनालेंड और स्वीजीलेंड में अंग्रेज नहीं गए। सोमालीलेंड वाले तो अंग्रेजों को अपने द्वीप में घुसने भी नहीं देते। युद्ध खतम होने पर जर्मन-पूर्वी अफ्रिका टैंगानी को अंग्रेजी-हुकूमत में शामिल कर लिया गया। इसका क्षेत्रफल ३७ लाख वर्गमील है। आबादी ५० लाख के करीब है। इस उपनिवेश के लिये हिटलर की महान् गर्जना थी। जर्मनी का यह सबसे सुन्दर और प्राकृतिक दृश्यों वाला उपनिवेश था।

अब जंजीबार को लीजिए, यद्यपि इसमें सुलतान का राज्य है, लेकिन सुल्तान महोदय ब्रिटिश रेजीडेण्ट के आधीन रहते हैं। यहाँ की ३३ लाख जनता ब्रिटिश रेजीडेण्ट से शासित होती है।

फ्रांस का अफ्रिका के ३२ लाख वर्गमील भूमि पर अधिकार है। ९ बड़े बड़े प्रान्त इसके कब्जे में हैं। जिसमें ट्यूनिस, मोरक्को, अलजीरिया आदि विशेष महत्व के स्थान हैं। आन-

जीरिया में ८ लाख फ्रांसीसी हैं। इस देश को फ्रांस में सम्मिलित हुए १०६ वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके। इसी तरह इटली भी अफ्रिका में घुस पड़ा है।

इटली की चालबाजी

इटली अफ्रिका में सन् १८७० ई० में घुसा। इसने रहीग्रता के सुल्तान से असब नामका एक बन्दरगाह खरीदा। सन् १८८० ई० में इस बन्दरगाह पर इटली ने अपनी सेना उतार दी। सन् १८८५ ईस्वी में इरीट्रिया के मुख्य बन्दर पर और पसावा पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। सन् १८९५ और ९६ में इटली ने अबीसीनिया को हराने की कई दफे कोशिश की। साम्राट मेनलिक ने इटली को बुरी तरह परास्त किया। सीन्योर मुसोलिनी ने एक दफे अपने भाषण में कहा था—कि हमें रेगिस्तानों की आवश्यकता नहीं है। इटली उर्वरा भूमि चाहता है।

चीन में विदेशियों का विस्तार

चीन एशिया खंड का पुराना देश है। संसार के सभी राष्ट्रों से इसकी आबादी कई करोड़ अधिक है। इसका विस्तार पहिले प्रशान्त महासागर से लेकर काले समुद्र और हिमालया की सीमा तक था। इसमें पहिले श्याम, तिब्बत आदि देश भी शामिल थे। सन् १५१६ ई० में पोर्तुगालवालों ने कैन्टन पर पहिला आक्रमण किया। इस संग्राम में चीनी हार गए और मकाऊ पर पोर्तुगाल वालों का कब्जा हो गया। इस संग्राम के बाद सन् १७५३ ई० में स्पेन ने फिलिपाईन द्वीपों पर अपना अधिकार जमाया। आज ये द्वीप

अमेरिका के अधिकार में चले गये हैं। १८ वीं सदी में अंग्रेज व्यापारी चीन के प्रसिद्ध नगर कैन्टन में पहुँचे, और अपना व्यापार शुरू किया। यह व्यापार ईस्ट-इंडियन कम्पनी के नाम से आरम्भ हुआ। कम्पनी ने एक भारी तादाद में अफीम की बिक्री शुरू की। सन् १८४० ई० में ब्रिटिश-ईस्ट इन्डिया कम्पनी के २० हजार अफीम के बक्स लूट लिये गये। इस लूट पर अंग्रेज लोग बिगड़ खड़े हुए। २८ जून सन् १८४० को अंग्रेजी सेना ने कैन्टन पर घेरा डाल दिया। परिणाम यह हुआ कि चीनियों ने शिकस्त खाकर कम्पनी को हांग-कांग बंदर देकर भी ८ करोड़ रुपये हरजाने रूप में और दिये। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरों में व्यापार के सभी सुभीते कम्पनी ने हासिल कर लिये।

सन् १३४४ ई० में अमेरिका के साथ भी चीन का सुलह-नामा हुआ। इसमें यह निर्णय किया गया कि विदेशी लोग चीनी कानून के अन्तर्गत नहीं बल्कि अपने २ देशों के प्रचलित कानूनों की तरह चीन में निवास करेंगे।

विद्रोह

सन् १८५० ईस्वी में चीन में मंचूरिया वंश को राज्यच्युत करने के लिए जोरों से विद्रोह खड़ा किया गया। यह विद्रोह, लगातार १४ वर्ष तक चलता रहा। इस भयंकर विद्रोह में चीनियों की आधुनिक शक्तियाँ निर्बल हो गईं। इस युद्ध में दो करोड़ आदमियों का कत्लेआम किया गया। सन् १८५० ई० में फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन ने अवसर देखकर दूसरा युद्ध आरम्भ किया। इस युद्ध में चीन के ११ बन्दरगाह विदेशियों ने हड़प लिये। इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद, फ्रांस ने कोचीन

नाग के प्रदेश पर कब्जा कर लिया। सन् १८८४ ई० में और सन् १८८६ ई० में इनटांगलिङ्ग नामक प्रांत पर भी कब्जा कर अपने समस्त साम्राज्य का नाम 'फ्रेंच इण्डो चाइना'(French Indo China)रख दिया। १ जनवरी सन् १८८६ ई० को ब्रह्मदेश ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। श्याम को चीन से विच्छेद कर फ्रांस और इङ्गलैंड ने बांट लिया। सन् १८६४ ई० में साम्राज्यवादी जापान ने अपना व्यापार बढ़ाने का उद्योग किया। १ अगस्त सन् १८६४ को चीन के विरुद्ध युद्ध घोषणा करके फारमोसा आदि प्रायद्वीपों पर कब्जा कर लिया गया। ६० करोड़ रुपये भी जापान ने वसूल किये। इसके कुछ दिनों बादही जर्मनी, फ्रांस और रूस ने रेलवे लाइन बनाकर अपनी शक्तियों को चीन में स्थायी रूप से दृढ़ बना डाली।

सन् १८६६ ई० में चीनियों ने विदेशी पादरियों के विरुद्ध बग़ावत का झंडा खड़ा किया। बहुत से यूरोपीय पादरी मार डाले गए। सन् १६०० में समस्त यूरोपीय शक्तियों ने मिलकर इस विद्रोह को दबा दिया। इस विद्रोह में एक अरब ४० करोड़ रुपये का हरजाना भी चीन को देना पड़ा। इसी मौके पर विदेशियों ने पेकिंग में अपनी रक्षा के निमित्त सेना रखने के लिये चीनी गवर्नमेंट की आज्ञा प्राप्त कर ली। सन् १६११ ई० में मांचू राजघराने को चीनी क्रांतिकारियों ने गद्दी से उतार दिया! इसके बाद लम्बा गृहयुद्ध छिड़ गया। सन् १६१४ ई० में जब यूरोपीय महायुद्ध शुरू हुआ तो जापान ने "शैडुंग" नामक देश पर कब्जा कर लिया। सन् १६१७ में जापान की प्रबलशक्ति ने चीनमें अपना अधिकार जमा लिया। वार्सेलीज़

की संधि में जापान के आसपास जितने भी जर्मन प्रदेश थे, जापानियों को दे दिए गए।

सन् १९३१—३८

सन् १९३१ ई० में जापान ने चीन की ५ लाख वर्गमील ज़मीन हड़प कर ली। जिसमें मंचूरिया, जेहोल, और मंगोलिया आदि शामिल हैं। इन प्रदेशों के छिन जाने से १/८ आबादी चीन के अधिकार से निकल गई। जापान इससे भी असन्तुष्ट नहीं हुआ, और भी अनेकों द्वीपों पर अपना कब्जा करना चाहा था। यह चीनी-विशाल साम्राज्य विदेशियों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया गया। चीन एशिया का सबसे विशाल और प्राचीन सभ्यताप्रचारक, कला-कौशल-युक्त एक प्रधान देश है। आज रौरव-नरक का एक स्थल बना हुआ है। जापान ने उसे नष्ट कर देने की भीषण प्रतिज्ञा की। जापानी सेनाओं ने चीन में भयंकर तांडव-नृत्य किया था। चीन अपने गौरव और स्वतंत्रता को भूलकर इस समय गृहयुद्ध में संलग्न है।

यूरोप की सामरिक-प्रवृत्ति

यूरोप संसार से लोहा लेने के लिए अपनी सामरिक तैयारी कितनी तेजी से बढ़ा रहा है; यह नीचे लिखे आँकड़ों से विदित होगा। इन आँकड़ों का अन्दाज सन् १९३६ में किया गया था, लेकिन अब सेनाओं की संख्या इन आँकड़ों से भी १॥ गुनी हो सकती है। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि यूरोप शान्ति चाहता है :—

देश	स्थायी सेना	रिज़र्व सेना
ब्रिटेन	३,३७,०००	१०,००,०००

रूस	१३,००,०००	२५,००,०००
जर्मनी	६,००,०००	१०,००,०००
फ्रांस	६,८४,०००	४०,००,०००
इटली	९,७०९,०००	१२,५०,०००
पोलैंड	२,७३.००००	७,००,०००
बेलजियम	६७,०००	६,००,०००
हंगरी	३५,०००	३५,०००
यूगोस्ला०	१,४०,०००	१,५०,०००
जेकोस्ले०	१,५०,०००	२,४०,०००
ग्रीस	६७,०००	५०,०००
हॉलैंड	६०,०००	७५,०००
रूमानिया	१,८०,०००	२,५०,०००

उपरोक्त आँकड़ों से यह विदित होता है, कि शीघ्र ही यूरोप में प्रलय के काले बादल मँडरा हैं। उपरोक्त सैन्य संगठन सन् १९३६ में था, लेकिन अब उससे १॥ गुना अधिक बढ़ा दिया गया है। रूस, अमेरिका और ब्रिटेन की सैनिक तैयारी सबसे अधिक है। गत १५ वर्षों से राष्ट्रसंघ ने जो इस सैनिक तैयारी को मिटा देने के लिए भागीरथ प्रयत्न किया, वह व्यर्थ गया। आज वही राष्ट्र आत्मरक्षा के नाम से बड़ी शीघ्रता के साथ अपना सामरिक बल बढ़ाने में संलग्न हैं।

—*—

संसार की राज्यक्रांतियाँ क्यों हुईं ?—

"प्रश्न यह उठता है कि संसार में राज्यक्रांतियाँ क्यों हुईं ?" जब कि लोगों ने समझा-देखा और सुना कि :—

The western civilisation is the civilisation of Huntors.

"अर्थात् पाश्चात्य-सभ्यता शिकारियों की सभ्यता है ?"— शासन की प्रत्येक प्रणाली में गुण और दोष दोनों ही होते हैं। यूनान का अरस्तू बड़ा ही राजनीतिज्ञ था; और वह एकतंत्रीय शासन को सर्वोत्तम शासन समझता था। भारत का अभूतपूर्व राजत्वकाल, पारदर्शी—समाज सेवी और विद्वान् राजा महाराजाओं की अनेक गुण-गाथाओं से भरा हुआ है। इन महाराजाओं में दोष भी थे, और गुण भी। उन्होंने अपनी विद्या-कला और शक्ति से एकतंत्रवाद की स्थापना कर संसार को मुग्ध किया था। परन्तु साथ ही साथ यह सभी स्वीकार करते हैं, कि सत्ता की दुरुपयोग-प्रणाली की इसमें अधिक संभावना होती है। अगर राजा-महाराजा-मंत्री और दीवान, सदा ही प्रजा-हितचिंतक बने रहें तो दुनियाँ में एकतंत्रीय शासन सब से सर्वोत्तम है। अतएव प्रजातन्त्र शासन-विधान एकतंत्रीय-शासन प्रणाली के दुरुपयोगों और गैर जिम्मेदारियों के रोकने का एक जन-सत्तात्मक-विधान मात्र ही है, जिसे साम्राज्यवादी ऐय्याशी और भोग-विलासों में डूबे रहने वाले बादशाह—जनपिता—एक हौआ समझते हैं।

कभी स्वार्थ के लिये, कभी अज्ञान के वशीभूत होकर तथा कभी अपने सलाहकारों की घोर मन्त्रणा से जब रक्षक—भक्षक बनता है और अपनी शक्ति का प्रयोग करने लग जाता है, तब जनता उसके अधिकारों को संकुचित कर उन्हें सीमाबद्ध कर देती है। यही प्रजातंत्रवाद है।

भारत में सभी शासन-प्रणालियाँ मौजूद थीं, परन्तु उनमें प्रधानता थी एकतंत्र शासन की। भारत के धार्मिक-

विधानों में राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि—ईश्वर का अंश, ईश-शक्ति कहा गया है। राजा की आज्ञा मानना प्रजा का महान् धर्म बतलाया गया है। साथ ही साथ राजा की भी व्याख्या की गई है, राजा का प्रधान धर्म है कि वह सच्चे हृदय से जनता का सेवक बनकर लोक कल्याण का सदा चिंतन करता रहे। महाभारत में निरंकुश सत्ताधारी राजाओं को चांडाल कहा गया है। अतएव निरंकुश सत्ता की भावना—निरंकुश सत्ता का विरोध उपदेशों और व्याख्यानों से नहीं किया जा सकता। निरंकुशता के लिये आत्म-त्यागी और देश-प्रेमी अंकुश की आवश्यकता होती है। एकतंत्र शासनविधान में सबसे बड़ा मुख्य दोष यह रहता है कि आज उसकी शासन-प्रणाली कुछ और है, कल कुछ और। एक मनुष्य की दृढ़ भावना, दृढ़ विचार और उसकी दृढ़ शक्ति ही जनता को नियंत्रित करती है।

निरंकुश-शासन

निरंकुश शासन की व्यवस्था में, राज्य के पदाधिकारियों की जो महान् मदान्धता होती है, उसमें लोक-सेवा आँधी की तरह उड़ जाती है। सदियों से संसार निरंकुश-शासन की छत्रछाया में अपना खून बहाता रहा। निरंकुश शासकों का इतिहास देखिए। आज से पचास वर्ष पहिले संसार की क्या दशा थी? जिसकी भुजाओं में शक्ति थी, जिसके हाथ में तलवार थी, जिसके मूछ में ऐठन थीं, घुमाव था, वह सत्ताधारी था। लोग उसके डर से काँपते थे, क्योंकि वह सत्ताधारी, ईश्वर का अंश था; और उसकी आज्ञा मानना धर्म था। पाश्चात्य सभ्यता पोप के आधीन थी; ' पोपों के

लगातार एलानों ने राजा को साक्षात् ईश्वर का अंश माना। बादशाहों ने सदियों से तलवारों की नोंक पर शासन किया। इस शासन-विधानों में गरीबों का बेहिसाब खून बहाया गया। उनसे धन छीना गया। वे लूटे-पीटे गये। निर्बल बच्चों, स्त्रियों और वृद्धों को जेलों में ठूँसा गया। संगीनों और तोप के गोलों से वे उड़ाये गये। अपनी स्वार्थ-परता के लिये गाँव के गाँव भस्मीभूत कर दिये गये। स्त्रियाँ नंगी की गईं, उनके गुप्त अंगों पर कठिन प्रहार किये गए, और वे जीवित जला दी गईं।

ब्रिटेन की धार्मिक क्रान्ति जो प्रोटेस्टेन्ट और कैथलिकों के बीच में हुई; और बरसों चली, उसमें अगणित स्त्रियों को जीवित आग में झोंका गया और हजारों बच्चों को उनकी माताओं के सामने मारा गया। इस रक्तरंजित इतिहास को पढ़कर कौन कह सकेगा कि निरंकुश-शासन में सभ्यता भी कोई चीज समझी जाती है। शासक जब तख्त पर बैठता है; तो पहिले वह अधिकारियों का कृपाभाजन बनने का प्रयत्न करता है, और अधिकारी उसके प्रिय-पात्र बनने के लिये जमीन आसमान एक कर देते हैं। शासक स्वयं ही अपना कैबिनेट ऐसे विश्वासपात्र लोगों का बना लेता है, जो उसकी समस्त इच्छा-पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। कर्तव्य की कद्र अनियन्त्रित शासन में होना असंभव है। यही शासक इतना स्वेच्छाचारी और विलासप्रिय हो जाता है, कि अन्त में वह अपना महान् पतन कर देता है। भारत ऐसे विलास-प्रिय नरेशों से भरा पड़ा है। मुमताज और इन्दौर नरेश की गुणगाथा—महाराज अलवर के निर्वासन आदि सभी कहानियाँ ऐसी हैं, जिन्हें इतिहासों के पाठक अच्छी तरह जानते

हैं। हरएक शासन में विशेषता होती है। निरंकुश शासन में भी एक बड़ी विशेषता है—सरकार के कृपापात्र बन जाने से आप दीवान भी बन सकते हैं। महाराज जयपुर ने एक बार प्रसन्न होकर अपने सईस को दीवान बना दिया। बूँदी के दीवान धन्नामल को किसी एक भाषा का भी ज्ञान नहीं है। ऊँचे से ऊँचे पद को आप निरंकुश सत्ता की कृपा से ही पा सकते हैं। एक नहीं हजारों व्यक्तियों ने जनता की लड़कियाँ उड़ा-उड़ाकर राजमहलों में भेजीं और पुरस्कार में लाखों रुपये प्राप्त किये। राजाओं के शौक के लिये राज-कोष का धन पानी की तरह बहाया जाना एक साधारण-सी बात है। राजा को जो शौक हो उसे पूरा होना ही चाहिए। खजाने में रुपया न हो तो जनता पीसी जाती है। एक राजा साहब शिकार को निकलते हैं, उनकी शिकारगाह के पास कुछ गाँव पड़ जाते हैं। राजा साहब का हुक्म होता है कि गाँवों को नष्ट कर दो और किसानों की फसल घोड़ों के लिये काट लो! यह फरमान निकलते ही गाँव ध्वंस कर दिये गए, और सैकड़ों किसान बे-घरबार के हो गए। यह निरंकुश शासन की सत्ता का मद है। यह वह शराब है, जिसे शासक पीता है, और अन्त में वह अपना सर्वनाश कर देता है। ऐसे शासन विधानों से जब जनता ऊब उठती है, वह मरने मिटने पर तुल जाती है, तब उसमें बदलने का भाव जाग्रत हो उठता है।

ब्रिटेन-फ्रांस, रूस, जर्मनी आदि सभी विशाल राष्ट्रों में मदान्धता का शासन था। जनता इतनी पिस चुकी थी कि अकेले रूस में जारशाही के समय ५० लाख से ऊपर किसान भूखे मर रहे थे; कुत्तों की तरह रोटियाँ बाँटी जाती थीं।

और वे गोली से मार दिये जाते थे। स्वयं ज़ार का प्रतिदिन का खर्च सैकड़ों पौंड था। एक तरफ जब ज़ार का इतना ऊँचा खर्च था, तो यहाँ भी उनके दादा निजाम हैदराबाद कम नहीं हैं। गोलमेज कांफ्रेंस में एक डेपुटेशन भेजने का खर्चा सिर्फ २६ लाख रुपया था। न मालूम इन २६ लाख रुपयों से हैदराबादी डेपुटेशन ने इंगलैण्ड में जाकर क्या किया? इसी तरह चेम्बर आफ़ प्रिंसेज की तरफ से जब कर्नल हक़सर प्रतिनिधि होकर गोल-मेज सभा में गए तो इनकी यात्रा का खर्च एक लाख साठ हजार रुपया आया। यह रुपया जो पानी की तरह बहाया गया, कहाँ से आया, किसने दिया था। नवाब भूपाल ने भी गद्दी के उत्सव के उपलक्ष में विलायत में साठ लाख रुपये खर्च किये थे। आखिर गरीब प्रजा का धन इस निरंकुश शासन में इसी तरह खर्च होता है।

इस प्रकार के निरंकुश शासन को ही साम्राज्यवाद कहते हैं। परम्परागत विधान इस शासन में उन्नति के बाधक होते हैं। विकासात्मक उन्नति होती ही नहीं। शासन कभी बिगड़ता है, और कभी सुधर जाता है। एक राजा के शासन काल में जो सुधार किया जाता है, उसे दूसरा राजा नष्ट कर देता है। एक राजा टैक्स घटाता है तो दूसरा उससे दूना बढ़ा देता है। शासकों की व्यक्तिगत आज्ञाएँ ही कानून के रूप में रोज बदलती हैं। इन हुक्मों पर जनता पीस डाली जाती है। जब एक राजा मरता है तो प्रजा घबरा उठती है; दूसरी तरफ कर्मचारी व्याकुल हो जाते हैं। संकल्प-विकल्पों में दुनियाँ डूब जाती है—चारों तरफ यह शोर होता है, न मालूम कब क्या होना वाला है। जागीरदार, सेठ, जमींदार

सभी आकुल हो जाते हैं। और नए राजा की विशेष कृपा प्राप्त करने के लिये सैकड़ों आयोजना किए जाते हैं। प्रत्येक कर्मचारी, शासक, अधिकारी और पदाधिकारी अलग-अलग अपने लिये राजा से "कृपा" खरीद लेता है। इस क्रय-विक्रय में अधिकारी जनता का बहुत सा खून चूस कर, राजा नामक देवता को भेंट चढ़ाते हैं। इस भेंट में गरीबों की गाढ़ी कमाई का पसीना—गरीबों की आहें—साहूकारों का धन—और बेजबान स्त्रियों का सतत्व नष्ट होता है? शायद ही ही ऐसा कोई शासक का नाम इतिहास में मिलेगा; जिसके पास एक अथवा दो रानियाँ हों। नीति और रीति के अनुसार राजा को सैकड़ों रानियाँ रखकर एक राज-प्रथा का पालन करना ही पड़ता है और विलासी कर्मचारी उनकी इच्छाओं की पूर्ति करके अपने स्वामिभक्त होने का परिचय देते रहते हैं।

इन्हीं कारणों से विश्व में एक आर्थिक संकट उपस्थित हुआ, इस आर्थिक संकट का केन्द्र मध्य-यूरोप बना। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ उपस्थित हुईं। सबसे बड़ी समस्या थी, सरकारों में परिवर्तन करने की। हकीमों ने बहुतेरे इलाज ढूँढ़े लेकिन उन्हें पुरअसर दवा नहीं मिली। इधर साम्राज्यवादियों में निरंकुशता अधिक बढ़ती गई। धीरे-धीरे व्यापक अविश्वास फैला। विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने जनता को एकसूत्र में बाँधा और उग्रता के रूप में वह संगठन प्रकट हुआ। रूस में, जर्मनी में, आयरलैण्ड में इटली और अनेक राष्ट्रों में यह उग्रता घुस पड़ी। फिर क्या था, संसार के देखते-देखते शासक गद्दी से उतार दिए गए। जनता ने

बागडोर अपने हाथ में लेली। क्रान्ति होने के यही कारण इतिहासों में मिलते हैं।

संसार की समस्यायें

गत महायुद्ध के बाद संसार साम्राज्यवाद के पंजे से छूटने लगा। चारों तरफ प्रजातन्त्रवाद की दुहाई दी जाने लगी। प्रजातन्त्रवाद भी स्थापित किये गये। लेकिन संसार ज्यों-ज्यों रोशनी में आता गया, वैसे ही उसकी उलझनें और भी बढ़ती गईं। एक एक गुत्थी सुलझ कर सैकड़ों गुत्थियों में आ फंसती थी। संसार का भविष्य गुत्थियों की गुलामी में पड़ गया। जर्मनी-फ्रांस-ब्रिटेन-रूस-जापान आदि सभी अपनी गुत्थियाँ सुलझाने बैठ गये। ये गुत्थियाँ ऐसी थीं जो तोप के गोलों और जहरीले गैसों से सुलझ सक्ती थीं। फिर किसी ने यह विश्वास भी नहीं दिलाया कि प्रजातन्त्र-वादी, सत्य-न्याय और धर्म को आगे रखकर अपनी नेक-नीयती का फैसला देंगे। इन प्रजातन्त्रवादियों का यह प्रथम कर्तव्य था, कि वे समस्त संसार को विश्वास दिला देते कि हमारा कर्तव्य सत्य और न्याय का होगा। न किसी निर्बल को दबाया जायगा, और न किसी की एक इञ्च जमीन छीनी जायगी। सबके अधिकारों की पूर्ण रक्षा होगी। परन्तु यूरोप के प्रजातंत्रीय राष्ट्रों ने ऐसा कदापि नहीं किया। जेनेवा में लगातार बैठकों के बाद कोई शांति का नुसखा न निकल सका। सबसे पहिले जर्मनी में हिंडेनबर्ग की सरकार का खात्मा होते ही और हिटलर को डिक्टेटरी मिलते ही, उसे अपने उपनिवेशों को वापस लेने तथा साम्राज्य-विस्तार की इच्छा बढ़ गई। इटली पड़ोसी अबीसीनिया को हड़पने का

स्वप्न देखने लगा। रूस संसार को जीतने का पुल बांधने लगा। फ्रांस और ब्रिटेन भी अपनी फौजी ताकत बढ़ाने में लग गये। एशिया में भी क्रांतियाँ हुईं। डाक्टर सनयातसेन ने चीन में एक नई जिन्दगी पैदा कर दी। टर्की में कमाल और अफगानिस्तान के अमीर अमानुल्लाखाँ ने एशिया में जान डाल दी।

लीग आफ नेशन्स के अधिवेशनों में कई गम्भीर समस्याएँ उपस्थित की गईं, जिसमें दो समस्याएं मुख्य थीं। पहिली निरस्त्री-करण की और दूसरी समस्या थी, निर्बल राष्ट्रों के रक्षा की। ये समस्याएं बड़े लम्बे-लम्बे कागजों पर लिखी गईं, और वे समस्याएँ प्रस्तावरूप में हल भी की गईं। लेकिन हाथी के दांत दिखाने के और थे। एक तरफ निशस्त्रीकरण के प्रस्ताव होते रहे और दूसरी तरफ लगातार फौजी ताकतें, हवाई जहाज और जहरीली गैसें, तोपें तैयार होती रहीं। लेकिन यह योजना देश की रक्षा के निमित्त संसार को बतलाई जाने लगी।

"प्रेसिडेन्ट हूवर का समझौता"

सन् १९३० के अन्त में ब्रिटिश-साम्राज्य, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जापान में यह समझौता हुआ, कि वे अपनी-अपनी जल सेनाएँ घटा लें। अमेरिकन राष्ट्रपति हूवर ने इस महान् समझौते की घोषणा की। इस समझौते में हूवर ने स्पष्ट शब्दों में यह बतलाया, कि फ्रांस और इटली आपस में समझौता करके अपनी-अपनी सेनाएँ सीमित कर दें; तभी आगे का कार्यक्रम सफल बनाया जा सकता है। यदि ये दोनों देश अपनी-अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाते जावेंगे, तो अमेरिका-ब्रिटेन

और जापान आदि देश अपनी ताकत कैसे घटा सकते हैं ? शस्त्र-विरोधी समझौते की सफलता के लिये राजनीति के विशेषज्ञ मि० क्रेग पेरिस गए और कुछ समय तक रहे भी। लेकिन इस समझौते का परिणाम उल्टा हुआ। इटली और फ्रांस अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगे रहे, न तो उन्होंने लीग ऑफ नेशन्स की परवाह की, और न मि० क्रेग की राजनीति का स्वागत ही किया। भारी संग्राम की तैयारी दिनों-दिन होने लगी। समझौते के विरुद्ध दोनों सरकारों ने एक विज्ञप्ति निकाल दी। जिसमें शांतिरक्षा के सभी कानून ठुकरा दिये गये। दोनों देशों में लड़ाई का सामान तेजी से तैयार होने लगे। इटली २ हवाई जहाज बनाता, तो फ्रांस ४ बनाने लगा। इन देशों की तैयारी देखकर ब्रिटेन, अमेरिका और जापान चुपचाप न बैठ सके। इन्हें भी चैन कहां था! मौके की तलाश में ये भी थे। इनका भी आपसी समझौता रद्द हो गया। ४ फरवरी को इन राष्ट्रों की ओर से एक कम्यूनिक निकाला गया, जिसमें यह दिखाया गया कि, इटली और फ्रांस को समझौता मनवाने का खूब प्रयत्न किया गया। इस प्रयत्न में हम विफल हो गए। इसलिये हम फिर अपनी स्थिति पर विचार करेंगे, इस आशय से अमेरिकन राष्ट्रपति हूवर के सारे प्रयत्न निष्फल कर दिये गए।

यद्यपि उपरोक्त समझौता रद्द हो गया था, परन्तु फिर भी मित्र राष्ट्रों में इसकी बातचीत जारी रही। अंग्रेजी परराष्ट्र मन्त्री श्री हेण्डरसन ने इस समय कुछ न कुछ जरूर ही करके दिखा दिया। फ्रांस और इटली में जल-सेनाविरोधी कुछ समझौता हुआ। लेकिन इस समझौते को परस्पर दो व्यक्तियों का समझौता करार दिया गया, दो राज्यों का नहीं। श्री एलेक्जे-

एडर ने इसका विरोध किया। उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा कि—"यह समझौता दो राष्ट्रों का ही है, व्यक्तियों का नहीं। हमें भ्रममूलक बातों को छोड़ देना चाहिए, जिससे संसार में बेचैनी न फैले। हमको आशा है कि आगामी लीग के अधिवेशन में यह समझौता स्थायी रूप से तय हो जायगा।

इस समय इटली में मुसोलिनी का अक्षुण्ण साम्राज्य था। सम्राट एक कोने में पड़े थे। लोकतन्त्रीय शासन का वह कम कायल था। इसपर भी उसकी देशभक्ति बड़ी चढ़ी थी। फासिस्टवाद के खिलाफ जरा भी जिसने विचार प्रगट किये कि वह तुरन्त ही जेल में ठूँस दिया गया। ऐसी कठिन समस्याओं में सभी चुप थे। शासन-विधान में परिवर्तन करने के विचार प्रायः गुप्त ही रखे जाते थे, उन्हें प्रगट करना राजद्रोह था। एक दफे अमेरिकन जनरल इटली में मुसोलिनी के साथ मोटर में घूम रहे थे। दैवयोग से एक अभागी लड़की मोटर से कुचल गई। मुसोलिनी ने मोटर तो खड़ी न की परन्तु यह कहता हुआ चला गया कि प्रधान मन्त्री की मोटर से अगर एक लड़की मर गई तो कोई बड़ी बात नहीं है। इस समाचार को जनरल मि० स्मडले बटलर ने समाचार पत्रों में छपाया, तब मुसलिनी ने एक लम्बा पत्र अमेरिका को लिखा और उस पत्र पर अमेरिका को इटली से माफी मांगनी पड़ी। साथ ही मि० बटलर पर केस भी चला।

लीग के कई महत्वपूर्ण अधिवेशन शान्ति के द्वार पर भी नहीं पहुँचे। विश्व शान्ति के नाम पर शक्तिशाली राष्ट्रों ने निर्बल राष्ट्रों को कुचलना शुरू कर दिया, आज जिस ढंग से उपनिवेश स्थापित किये जा रहे हैं, वे संसार के सामने एक अमानुषिक कृत्य ही ठहराए जाते हैं।

सन् १९३७ और सन् १९३८

सन् १९३७ और सन् १९३८ में शक्तिशाली राष्ट्रों ने निर्बल राष्ट्रों पर अपनी गिद्ध दृष्टि डाली। इटली ने इसी वर्ष संसार के देखते देखते अबीसीनिया को हड़प लिया। संसार ने मानवता को साथ लेकर इसका विरोध किया होता तो इटली की पाशविक शक्ति का पंजा कभी भी अबीसीनिया की तरफ न बढ़ता। अबीसीनिया आधुनिक उन्नति के विकास में सबसे पीछे था। फिर भी उसे राष्ट्रीय गौरव प्राप्त था। विश्व शान्ति की दम भरने वाली लीग ने यह तमाशा चुपचाप देखा।

जिस तरह आज राष्ट्रों के लूटने का साधन बनाया जा रहा है, उसे राजनीतिक धुरंधर निर्बल राष्ट्रों की रक्षा कहते हैं। वर्तमान सभ्यता के युग में निकृष्ट साधनों की सफलता फौजी-शक्ति के आधार पर ही हो रही है।

चूहे के बिल में साँप—१९३८

मनुष्यों का मानव-संसार होना चाहिये। संसार को इस सभ्यता के युग में मानवीय हृदयों की आवश्यकता है। आज संसार के उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ उच्चतम-मानव आदर्शों की घोषणा करते हैं, तो दूसरी तरफ उन्हें कुचलने के लिये बारूद-खाना भी बनाते हैं। कोई व्यक्ति और समाज यदि इन अत्याचारों को प्रकाश में लाता है, तो कानून और राज्य दंड से वह कुचल दिया जाता है। आज की औपनिवेशिक सभ्यता हमारे सामने है, एक दल दूसरे दल में जबरदस्ती घुसकर वहाँ अपनी सत्ता स्थापित कर दूसरे दलों को निकाल बाहर करता है। अपनी नीति और शासन की सफलता के लिये जातियों को तथा उस देश की प्राचीन सत्ता को नष्ट कर देना, इन शक्तिशाली राष्ट्रों का बायें हाथ का खेल है।

जर्मनी ने सूडेटन प्रांत को बातों ही बातों में हड़प लिया और विश्व-शान्ति की रक्षा की दुहाई दी जाने लगी। कहने की आवश्यकता नहीं, कि ब्रिटेन सरीखा राजनीतिज्ञ राष्ट्र भी जर्मनी की भीतरी तैयारी देखकर दब-सा गया। मि० चेम्बरलेन ने इस टुकड़खोरी को एक शांति का आधार मान, जेक सरकार को दबाकर, उसका एक बड़ा भारी शक्तिशाली और धनसम्पन्न प्रांत उससे छिनवा दिया।

चीन और जापान

सन् १९०४ ई० से जब चीन अपने पैरों पर खड़ा हुआ, और डाक्टर सन्यात सेन ने एक नवीन-जाग्रत पैदा की तो, जापान को उसके भविष्य में खतरा दिखाई देने लगा। चीन की भयंकर राज्यक्रान्ति के बाद डा० सन्यातसेन ने अपना राष्ट्रीय संगठन बड़े जोरों से आरम्भ किया। फारस, अफगानिस्तान-तुर्की और गुलाम-भारत ने भी चीन के स्वतन्त्र होने में अपूर्व सहायताएँ भेंट कीं।—चीन की इस अपूर्व जाग्रति को जापान देख नहीं सका। जापानी व्यवसाय को इस जाग्रति से बहुत धक्का लगा। जापान चीन में व्यापारिक स्वतन्त्रता के लिये बहुत दिनों से चेष्टा कर रहा था। डाक्टर सन्यात सेन की सरकार ने उसके प्रत्येक मार्ग में बाधा डाली। दूसरी तरफ जापान जोरों से अपनी फौजी शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ था। उसने संसार से लोहा लेने के दावे की घोषणा की। इस तैयारी के बाद, उसने मौका पाया,

और सन् १९३८ का वर्ष उसे इस घातक नीति में उपयुक्त सिद्ध हुआ। उसने जरा सी बात पर अपनी सेना चीन भेज दी। यद्यपि संसार ने जापान की इस घातक नीति का विरोध किया। अमेरिका सरीखे शक्तिशाली राष्ट्रों ने भी इस भीषण युद्ध को रोकने के लिये यत्न किए, लेकिन मदान्ध जापान के आगे सब बेकार साबित हुए।

ब्रिटेन ने यद्यपि इस युद्ध का विरोध किया, लेकिन दबी जबान से। ब्रिटेन को चीन की सहायता करना आवश्यक था, लेकिन वह भी इसी ताक में बैठा था, कि इस लूट खसोट में हमें भी कुछ हिस्सा जरूर मिलेगा, इससे उसने तटस्थ रहने की नीति स्वीकार की। जापान ने जो कुछ भी युद्ध-नीति के विरुद्ध चीन में कार्य किए उसे संसार छिपी बिल्ली की तरह देखता रहा। हजारों बालिकाओं और स्त्रियों के साथ जघन्य और पाशविक अत्याचार करने के बाद, पशुओं की तरह वे काट-कर फेंक दी गईं।

चीन ने इस अत्याचार के सन्देश को संसार के कोने-कोने में भेजा, परन्तु संसार ने इस करुण-कहानी को सुनकर ठुकरा दिया। ब्रिटेन के सिपाहियों की बेइज्जती मि० चेम्बरलेन का राष्ट्र चुपचाप देखता रहा। ब्रिटेन के जहाजों और बोटों पर हवाई हमले किये गए। अन्तर्राष्ट्रीय-बस्तियों में घुसकर जापान ने चीनियों को ही नहीं बल्कि, समस्त विदेशी सिपाहियों को मारा पीटा, फिर भी ये कृत्य जमाना चुपचाप देखता रहा। एक वर्ष पर्यन्त चीन सरकार तथा चांगकाई शेक ने जापानियों का भरपूर मुकाबला किया। सन् १९३९ ईस्वी का वर्ष कैसा बीतेगा, यह तो नहीं लिखा जा सकता; लेकिन

समय का तगादा है कि इस महायुद्ध में चीन की ही जीत होगी और उसे एक दिन वह अवसर प्राप्त होगा, जो कि आज जर्मनी को है।



रूस की राज्य-क्रान्ति

रूस का मजदूर और किसान आन्दोलन

रूस संसार के राष्ट्रों में एक महान राष्ट्र है। यूरोप की राज्यक्रान्तियों में रूस की राज्यक्रान्तियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। यह बतलाया जा चुका है कि क्रान्तियाँ क्यों होती हैं? गत उन्नीसवीं सदी क्रान्तियों की सदी और निरंकुश शासकों का जमाना था। रूस की पहली राज्यक्रान्ति सन् १९०५ ई० में हुई और दूसरी राज्यक्रान्ति सन् १९१७ में हुई, जिसने ४८ घंटे में ही बादशाही तख्त को उलट दिया। रूस की पहली क्रान्ति जो १९०५ ई० में हुई थी, उस समय आर्थिक संकटों से देश घबड़ा उठा था। तब रूस में पूँजीपतियों की तूती बोलती थी। वे देश की तमाम सम्पत्ति के स्वामी थे। मजदूर ४८ घण्टे काम करते थे। अपनी चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते थे। उन्हें दिन में

एक बार भी खाना नसीब नहीं होता था। इन मजदूर और किसानों को नित्य ही इन धनवानों का शिकार होना पड़ता था। किसान के पास अगर ६ एकड़ जमीन थी; तो जमींदार के पास ८०००० एकड़ जमीन थी। ऐसे जमींदारों की संख्या रूस में ७०० से अधिक नहीं थी। इन जमीदारों के पास सारे देश की उपजाऊ भूमि का १ ३ हिस्सा था। याने ६ लाख किसानों से भी तिगुनी भूमि पर इनका अधिकार था। जमींदार अधिकांश भूमि किसानों को ही लगान पर दिया करते थे। किसानों को बहुत ही अधिक लगान देना पड़ता था। कहीं-कहीं उपज का आधा भाग जमींदार को देना पड़ता था। जमींदारों की बेगारी करना भी एक असाधारण कानून था, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति बड़ी ही भयंकर थी। इन किसानों में जो थोड़े बहुत धनी थे, उनके पास खेती करने के साधन भी न थे। अधिकतर रूसी किसान अपनी जमीन घोड़ों से जोतते हैं। गत ३० वर्षों में रूस में १ करोड़ घोड़े और बैलों की संख्या घट गई, जिससे किसानों की दशा और भी बिगड़ गई।

उन्नीसवीं सदी पूँजीपतियों की उन्नति का जमाना था। तमाम देश में बहुत से कारखाने खुल गए। इन कारखानों में बहुत से मजदूर काम करने लगे। यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा कारखानों की उन्नति यहाँ खूब हुई। कच्चे लोहे की पैदावार में रूस ने अच्छा स्थान प्राप्त किया। जितना कच्चा लोहा यहाँ उत्पन्न होता था, उतना यूरोप के चार पाँच राष्ट्र मिलकर भी पैदा नहीं कर सकते थे। तेल और कोयले के मुकाबले में सिर्फ अमेरिका का ही मुकाबला कर सकता था।

रूई के उद्योग-धन्धों में भी रूस आगे बढ़ रहा था। इन कल कारखानों ने छोटे-छोटे गरीबों के उद्योग-धन्धों का एकदम नाश कर दिया। इस औद्योगिक उन्नति ने रेल के विस्तार को और भी बढ़ा दिया। सन् १८६० में जहाँ रेलवे लाईन १२४० मील लम्बी थी, वहाँ सन् १९०० में उसका विस्तार २७८६०. मील हो गया। मजदूरी के सस्तेपन ने भी पूँजी-पतियों का साथ दिया। मजदूरों से पूँजीपति अधिक लाभ उठाते थे। और देशों की अपेक्षा रूस की मजदूरी बहुत सस्ती थी। विदेशी पूँजीपतियों ने अपने ६० करोड़ रूबल्स रूस में लगा दिये। मुख्यतः फ्रांस और जर्मनी ने ही अपना धन रूस में लगाया। इसी पूँजी पर रेल और कोयले के कारखाने चले। रूस ने १७ वीं सदी में जो औद्योगिक उन्नति प्राप्त की थी, वह २० वीं सदी में प्रायः नष्ट हो चली! यही कारण था कि किसान लोग तबाह हो चले थे।

रूस की बीसवीं सदी

रूस की बीसवीं सदी बहुत ही असंतोष-जनक हुई, मजदूर और किसानों में तबाही के लक्षण स्पष्टतया दृष्टि-गोचर होने लगे। मजदूर और किसान इस तबाही से बचने के लिये अपनी दशा का सुधार करना चाहते थे। उन्होंने अपने सुधारों का श्रीगणेश किया। शासकवर्ग इस जागृति को देखकर घबड़ा उठे, अतएव उन्होंने इस आन्दोलन को आरम्भ में ही दबा देना उचित समझा। उन्होंने मजदूरों को कई आशाएँ देकर उनका आन्दोलन शान्तिमय वैध रूप में परिणत कर दिया। रूसी पुलिस ने एक ऐसी तरकीब सोची जिससे तमाम मजदूरों पर उसका

काफी दबदबा हो गया। रूसी पुलिस ने मजदूरों के लिये अनेक क्लब और संघ खोले, जिसमें मजदूरों को शामिल होने का आदेश दिया गया। इन संघों के कार्यकर्ताओं का यही उद्देश था कि वे मजदूरों को शान्तिमय बनाए रखें! ये संघ कुछ ऐसी रियायतें भी मालिकों से दिला देतीं थीं; जिससे मजदूर सदा प्रसन्न रहा करें। यह एक ऐसा जाल था, जिसमें समस्त मजदूर फाँस लिये गए। १६०२ फरवरी की १६ तारीख को १० हजार मजदूरों ने अपनी माँगों का विराट प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन में संघों ने भी दिखावटी रोष जाहिर किया। धीरे-धीरे मजदूरों ने इन संघों की भीतरी चालें जान लीं। उनका ध्येय भी मजदूरों को प्राप्त हो गया। अतएव उन्होंने सन् १६०३ ई० में भयंकर हड़ताल की और तमाम संघों को अपने आधीन कर लिया।

पीटर्स का पादरी

पुलिस का प्रधान अड्डा पीटसवर्ग था। पीटर्सवर्ग का पादरी खुफिया पुलिस का एजेण्ट था। इसका नाम गपन था। यह महाभयंकर पुरुष था, यह मजदूरों के उठने वाली हस्तियों को मिटा देना चाहता था। पुलिस विभाग उसे खूब रुपये देती थी। उसका निजी खर्च भी पुलिस से अलग बँधा था। गपन ने अपना कार्य सन् १६०३ ई० से प्रारम्भ किया। उसने अपना जाल अनेक प्रान्तों में बिछा दिया। वसीलियत्थ-नेवस्की-वीवर्ग-मास्को आदि में उसने अपनी सभाएँ स्थापित कीं। इन सभाओं का नाम उसने गपन-सभाएँ रक्खीं। गपन के संघों में काफी मजदूर शामिल हो गए थे। सन् १६०४ के दिसम्बर मास में ४ मजदूर एक

कारखाने से बरखास्त किये गये। मजदूरों को बहाल कराने के लिये एक डेपुटेशन डायरेक्टर से मिला। परन्तु डायरेक्टर ने उनकी प्रार्थना ठुकरा दी। अतएव अब निश्चय किया गया कि जंगी हड़ताल की जावे। पहिली जनवरी को पुटलिन के कारखाने में जंगी हड़ताल हुई। यह मजदूर इसी कारखाने के थे। तीसरी जनवरी को धुआँधार हड़ताल हुई। मजदूरों ने जो मांगें पेश कीं, वे इस प्रकार थीं :—

(१) प्रतिदिन आठ घंटे से अधिक काम न करना।

(२) पुरुषों के वेतन में ६६ फीसदी, और औरतों के वेतन में १०० फीसदी तरक्की की जाय।

(३) स्वास्थ्य आदि का विशेष प्रबन्ध हो।

इस हड़ताल ने विशाल रूप धारण किया। आन की बात में हड़तालों की धूम मच गई। सिर्फ पीटर्सबर्ग में ही एक लाख पचास हजार मजदूरों ने हड़ताल कर दी। इन हड़तालों में प्रेसों के भी कर्मचारी शामिल हो गए। इसलिये पीटर्सबर्ग के अखबार भी बन्द हो गए। गपन की सहायता से जार के महलों तक जुलूस ले जाने का निश्चय किया गया। गपन ही इसका सञ्चालक था। उसने एक ऐसा लम्बा भाषण दिया; जिससे मजदूर खूब उत्तेजित हुए। भाषण सिर्फ एक राजनैतिक चाल थी। ९ वीं जनवरी को जुलूस निकला। जुलूस में लाल-झंडा नहीं रक्खा गया। आगे-आगे जार की तस्वीर और गिरजाघरों के झंडे थे। जुलूस में सरकारी प्रबन्ध भी अधिक था। जार ने जनता को शान्त रखने का भार ग्रांड-ड्यूक-व्लाडीमियर के सिर दे दिया। उसे यह भी विशेष अधिकार था कि समय पड़ने पर वह समस्त सेना का प्रयोग कर सकता था। उसने पीटर्सबर्ग में

इतनी सेना जमा कर ली कि चारो ओर सेना ही सेना दिखलायी देती थी।

व्लाडीमीयर की नीचता

जुलूस बड़े उत्साह से आगे बढ़ा। रास्ते में उसे किसी ने न रोका। लेकिन जब राजमहल के कुछ फासले पर ही पहुँचने वाला था कि एक एक घुड़सवारों का हमला हुआ। सैकड़ों निर्दोषों को घोड़ों की टापों ने रूँध डाला। इसके बाद जनता गोलियों से भून दी गई। भागते हुये लोगोंके सिर काट दिये गए! जो घायल थे वे मौत के घाट उतार दिये गए। गपन ने भाग कर अपनी प्राण-रक्षा की। मजदूर छाती खोलकर खड़े हो गये और लगातार गोलियाँ खाने लगे। ट्राट्ज पुल पर जब जुलूस पहुँचा; तो सेनापति ने आज्ञा दी, कि "हमला करो"। उसके मुँह से यह निकलते ही; भूखे भेड़ियों की तरह घुड़सवार उनपर टूट पड़े। बच्चे, स्त्रियाँ और बूढ़े सभी जमीन पर लोटते हुये नजर आने लगे। वासीलियस्की द्वीप में मजदूरों ने सरकारी स्थानों पर भयंकर हमला किया। सेना पर गोलियाँ ईंट और पत्थर चलाए गए। दूसरे दिन इस हत्याकांड के विरोध में समस्त रूस के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। इस हड़ताल में हड़तालियों और सेना का खूब संघर्ष हुआ।—व्लाडीमीयर की इस नीचता से रूस नवीन युग का श्रीगणेश हुआ।

आन्दोलन का उत्साह

हत्याकाण्डों से आन्दोलन और भी ऊपर उठा। अभी तक

किसान और मजदूर जार को अपना ध्यावान् स्वामी समझते थे और इन अत्याचारों के करने वाले शासक ही समझे जाते थे। उनका यह विश्वास था कि जार को अभी हमारे कष्टों का पता भी नहीं है। लेकिन इन हत्याकांडों से उनके होश ठिकाने हो गये। वे अब जार को एक नीच आत्मा और शैतान का रूप समझने लगे। जार पर से सदा के लिये विश्वास उठ गया। जनवरी में जार का अन्त कर देने के लिये नवीन विचारों की तरँगें पैदा हुईं।—कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्त अब जनता समझने लगी। इस जागृति में मार्क्स की महान् आत्मा रूस के साथ थी। वह आकाश में मँडरा कर कह रही थी; जार-शाही का अन्त कर दो। जार की आत्मा मार्क्स के सिद्धान्तों से घबड़ा रही थी।

मजदूरों ने अब और भी भयंकर रूप धारण किया। जनवरी से लेकर अक्टूबर मास तक आन्दोलन में खूब जान फूँक दी गई। मौत को लोग जिंदगी समझने लगे। सन् १९०५ ई० तक समस्त रूसी मजदूर एक ही संगठन के झण्डे के नीचे आ गए। जनता भी मजदूरों के साथ हो गई। अब रूस में दो पार्टियाँ कायम हो गईं। एक प्रजा-सत्तात्मक पार्टी जो जारशाही को दफना देना चाहती थी, और दूसरी मजदूरों की पार्टी थी जो पूँजीपतियों को ठिकाने लगाने के विचार में थी। दिनों दलों ने अपना काफी संगठन कर लिया। देशभर में किसान और मजदूर सभाएँ स्थापित की गईं। इन कार्यों में सबसे पहिला प्रान्त पोलैण्ड था; जिसने जारशाही का अन्त कर देने की प्रतिज्ञा कर हथियार उठा लिये थे। गर्मियों में बड़ी ही भयंकर हड़ताल इवान बवसेनसेस्क में हुई, जिसमें पचास हजार मजदूर शामिल हुए। यह हड़ताल एक सप्ताह

तक जारी रही। शहर में सभाबन्दी का कानून था। इससे टल्का नदी के किनारे सभा की गई। पूँजीपति मजदूरों के साथ कुछ रियायतें करना चाहते थे, परन्तु मजदूर अपनी मांगों से एक इञ्च भी पीछे हटना नहीं चाहते थे। वे अपनी समस्त माँगों पर दृढ़ थे।—इन लगातार हड़तालों से मजदूरों की आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत ही खराब हो गई। उन्हें लाचार हो काम पर वापस जाना पड़ा। इस बढ़ते हुए आन्दोलन और घटनाओं को देखते हुए जार ने कुछ माँगें मंजूर कीं।

जार ने सिनेटर शिदलोवस्की कमीशन नियुक्त किया, जिसका उद्देश्य था मजदूरों की भीतरी हालत को देखना तथा उनकी नाराजगी का पता लगाना। एक दूसरा कमीशन भी नियुक्त किया गया जो स्टेट-ड्यूमा नाम की सभा बुलाने की योजना तैयार करे। इस सभा को केवल बहस करने का हक था। कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं था। ये सभी कार्रवाइयाँ सिर्फ कागजी लिखा पढ़ी थीं। इनसे मजदूरों की बेहतरी का कोई भी सवाल हल न हुआ। अब मजदूरों ने दूसरा रास्ता अख्तियार किया। किसानों में आन्दोलन फैलाना शुरू किया गया। बिजली की तरह किसानों में आग भड़क उठी। सभी तरह के किसान झण्डे के तले आ गए। ३१ जुलाई को मास्को में अखिल रूसी किसान सभा की बैठक हुई। किसान सभा ने भी दो पहलू पकड़े। एक राजनैतिक पहलू और दूसरा आर्थिक। इस किसान आंदोलन के वे लोग अगुआ बने, जो पहिले सेना में रह चुके थे। रूसी-जापानी युद्ध से पराजित हुए किसान सिपाही इस आंदोलन के मुखिया थे। इनकी संरक्षता में किसानों ने अच्छा संगठन किया।

सन् १९०५ ईस्वी

सन् १९०५ ई० के जून मास में रूस के एक जहाजी बेड़े में विद्रोह हो गया। इस बेड़े का नाम था 'पोटेम्किन-क्रूजर'। क्रूजर के खेनेवाले मल्लाहोंने आर्थिक कठिनाई के कारण हड़-ताल कर दी। एक मल्लाह भी मार डाला गया। लेकिन यह विद्रोह शीघ्र ही दबा दिया गया। बेड़े के बहुत से आदमी भी पकड़े गए, जिससे उसने आत्म-समर्पण कर दिया! यह विद्रोह असफल हुआ; लेकिन जहाजी दुनियां में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। १९०५ के अक्टूबर मासमें फिर हड़ताल फैली। यह हड़ताल मास्को से आरम्भ होकर धीरे-धीरे समस्त देश में फैलती गई। प्रेस कर्मचारियों ने भी हड़ताल कर दी। इसी समय स्टेट-रेलवे कर्मचारियों की एक सभा पीटर्सबर्ग में हुई। सरकार इस रेलवेकी कांग्रेससे बहुत भयभीत हुई, उसने बहुत से कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। नतीजा यह हुआ कि इन गिरफ्तारियों से रेलवे के तमाम मजदूरों ने हड़ताल कर दी। वे खुलेआम विद्रोह की तैयारी करने लगे। सातवीं अक्टूबर को कजन रेलवे का चलना बन्द हो गया। इसके बाद डाक और तार वालों ने हड़ताल करके सरकार की नाक में दम कर दी। हड़ताल की गति मास्को से पीटर्सबर्ग तक बढ़ती चली गई। यह हड़ताल इतनी व्यापक हो गई कि समस्त रूस के कारखाने इसमें शामिल हो गए। रेलगाड़ी, तार और अखबारों का छपना तक बन्द हो गया। प्रतिदिन हड़तालियों के खून प्रदर्शन होते थे, जिससे लाखों की ताय-दाद में जनता शामिल होती थी। सरकार ने इसे दबाने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह असफल ही रही। वह जितना दमन करती थी, जनता उससे दूनी आगे बढ़ती थी। १७

अक्टूबर को जार ने एक मैनीफेस्टो निकाल कर जनता को कुछ अधिकार देने का निश्चय किया और लेजिस्लेटिव कौंसिल बुलाने की घोषणा की। यह घोषणा भी शीघ्र ठुकरा दी गई। जनता ने इसे जाल समझा और इस जाल में फँसने से उसने उसी दम इन्कार कर दिया। २० अक्टूबर के एक "वर्कर्स डिफ़ीज सोवियट न्यूज" नामक रूसी अखबार ने लिखा था—

"यद्यपि हमें वैध स्वतन्त्रता दे दी गई है, पर असेम्बली में हमें बोलने का अधिकार न रहेगा। भवन सैनिकों से घिरा रहेगा। हमलोग विधान जरूर पा गए हैं, लेकिन पाबन्दियाँ सेन्सर, जब्ती, गिरफ्तारियाँ आदि सभी ज्यों की त्यों बनी हैं।"—

लेनिन

पाठकों को स्मरण होगा, कि लेनिन ही इस क्रान्ति का सरदार था। वह गरीब किसान था, उसमें उत्तेजना थी, आदर्श था। गरीबों के प्रति ईश्वर ने उसे एक प्रधान शक्ति दी थी, वह सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करते-करते समस्त रूस का भाग्य-विधाता बन गया था। उसके भाषण में भीषण उत्तेजना थी, उसकी ज्वालामयी वाक्-शक्ति जार के निरंकुश शासन को भस्म करती थी। लेनिन ने जब उक्त मैनीफेस्टो का हाल सुना तो वह दंग रह गया। उसने बहुत ही कड़े शब्दों में उत्तर दिया—

"भला जार के शब्दों में कौन विश्वास करेगा? मैनीफेस्टो में सिर्फ वायदा किया गया है। पर वायदों में विश्वास करना निरी मूर्खता है। क्या जनता ने इसीलिये

खून बहाया है, कि वह शब्दों के रचना-जाल में फँस जाय।"

उपर्युक्त विचारों से जनता और भी प्रभावित हो उठी, और हड़ताल उसी तरह जारी रही जैसे पहिले थी। अब पीटर्सबर्ग की मजदूर कौंसिल ने हड़ताल बन्द कर दी और युद्ध की तैयारियाँ गुप्तरीति से करने लगी। उपरोक्त मैनी-फेस्टो में गरमदल के लोग जिनमें अधिकांश पूँजीपति थे फँस गए, और सरकार की तरफ आ गए। वे मजदूर आन्दो-लन के घोर-विरोधी बन गए। मजदूर दुनियाँ के बाद किसानी दुनियाँ में भीषण आन्दोलन शुरू किया गया। लेनिन गाँव-गाँव घूमता और किसान सभायें स्थापित करता तथा किसानों को अपने अधिकारों पर दृढ़ रहने का आदेश देता। एक दिन में वह कई गाँवों की खाक छानता था। यद्यपि उसका जीवन संकटमय था, विपत्ति के बादल उनके चारों ओर थे, फिर भी वह उनकी रत्ती भर परवाह नहीं करता था। किसान आन्दोलन ने थोड़े ही दिनोंमें भीषण रूप धारण कर लिया। मर-मिटने के लिये लाखों किसान लेनिन के झंडे के नीचे आ गये। पोलैण्ड-रूस और काकेशस के गावों में तहलका मच गया। भीषण-विद्रोह शुरू हो गया। जमींदार लूट लिए गए। उनकी सम्पत्ति छीनी गई। बहुत से मार डाले गए। अब जमींदार लोग प्राण लेकर भागने लगे, और सरकार की शरण में आने लगे। करीबन २००० मकान नष्ट कर दिये गए।

सन् १९०७ ई० में अखिल किसान संघ की दूसरी काँग्रेस ७ वीं नवम्बर को शुरू हुई। इस काँग्रेस में किसानों ने आर्थिक और राजनैतिक माँगें पेश कीं। यह आन्दोलन बहुत

हा सफल हुआ—सेनाओं में इसकी चिनगारियाँ पहुँचने लगीं। लेनिन ने ऐसे साहित्य का प्रचार किया था, जिसे पढ़ते ही सैनिक भड़क उठते थे। ये साहित्य धीरे-धीरे पल्टनों में वितरण होने लगे, और किसी को कानों-कान खबर न हुई। पीटर्सबर्ग के सेना की कई टुकड़ियों में विद्रोह की भावना फैल गई। काले सागर के एक बेड़े ने भी विद्रोह का झण्डा ऊँचा किया। "ओटस्वकच" नामक क्रूजर ने भी विद्रोह का झंडा फहराया। इस विद्रोह से बहुत से बेड़ों पर "लाल झंडे"—लगा दिये गए। अब मजदूरों की माँगें और भी अधिक हो गईं। उन्होंने अब हरएक प्रान्त में मजदूर सोवियेट कायम की। इन सोवियटों में ८०,००० मजदूर शामिल हुए। सोवियट की पहली बैठक मास्को में हुई, जिसमें १८० मजदूर प्रतिनिधि भिन्न २ प्रान्तों से आए। यही सोवियट आगे चलकर मजदूरों की एकमात्र संस्था हुई। ३१ अक्टूबर को सोवियट का पहला एलांन निकला कि, कोई भी मजदूर ८ घंटे से अधिक काम न करे, और घंटे पूरे होने पर काम छोड़ दे। जहाँ कारखाने के मालिक इसका वि ोध करें वहाँ जंगी हड़तालें की जायँ। पूँजीपतियों ने मजदूरों का ऐसा रुख देखकर अपने कारखाने और मिलें बन्द कर दीं। हजारों मजदूर कारखानों से निकाल दिये गए, और उनकी तनख्वाहें जप्त कर ली गईं। पूँजीपतियों के इस भयंकर दमन से मजदूर कुछ दबने लगे। बहुत कुछ काम पर लौटने लगे। सोवियट ने भी मजदूरों की आर्थिक दशा देखकर आन्दोलन स्थगित कर दिया। २६ अक्टूबर को क्रान्सटाईड की सेना ने भीषण-विद्रोह जारी कर दिया। इस विद्रोह के नेता सैकड़ों सैनिक और मल्लाह भी थे। २९ अक्टूबर को

कोर्टमार्शल में इनपर मुकदमें चले और पोलैण्ड में मार्शल ला जारी कर दिया गया। ५ नवम्बर को डाक और तार वालों ने हड़ताल कर दी। पर रूस की जारशाही बहुत मजबूत थी। मजदूरों को कुचलने के लिये काफी ताकतवर थी। जारको अपनी सेना पर बहुत विश्वास था। वह जानता था कि उसके पास इतना धन और इतनी सेना है, कि वह संसार का सामना कर सकता है। जार ने सोवियटों को नष्ट करने का निश्चय किया। क्योंकि वह जान चुका था, कि समस्त अनर्थों की जड़ ये सोवियट ही हैं। सोवियट का दब-दबा भी काफी था। तमाम रूस के सरकारी डिपार्टमैंण्ट उसके एलानों का पालन करते थे। स्टेट रेलवे का कर्मचारी विभाग पूरी तरह से सोवियट के साथ था। तमाम देश की फैक्टरियाँ, मिल और प्रेस सोवियट के कहने में थे। नगर को पानी मिलना भी सोवियट की इच्छा पर निर्भर था। ट्रामवे पर सोवियट का पूरा अधिकार था। अधिकांश सेनाएँ सोवियट के विचारों से प्रेम करती थीं। अतएव सोवियट सत्ता का बहुत अधिक प्रभाव था। लोग जारशाही को कुछ भी नहीं समझते थे। इस सोवियट का जन्मदाता था, लेनिन।

सरकारी दमन

सोवियट को मटियामेट करने के लिये जार अनेक उपाय करने लगा। सोवियट के जितने नेता थे, सभी पकड़ लिये गए और जेल में ठूँस दिए गए। पुलिस मनमाने अत्याचार करने लगी, लेकिन सोवियट जरा भी विचलित नहीं हुई। उसने २२ नवम्बर को आर्थिक-बायकाट करना आरम्भ

किया। मजदूर लोग बैंकों से अपना-अपना रुपया खींचने लगे। इससे सरकार दंग हो गई। उससे शीघ्र ही सोवियट के चेयरमैन को पकड़ लिया, जिससे यह आर्थिक आन्दोलन दब गया। तीसरी दिसम्बर को जब सोवियट की एक बैठक हो रही थी, तो सरकार ने उसके तमाम मेम्बरों को पकड़ लिया। इस विरोध में जंगी हड़ताल हुई और मास्को इस हड़ताल में सबसे आगे रहा। मास्को के एक लाख पचास हजार मजदूरों ने हड़ताल कर दी। इस समय वहाँ गवर्नर-जनरल बड़ी ही विकट समस्या में पड़ गया। मास्को में काफी सेना नहीं थी। जो सेना वहाँ मौजूद थी, उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता था। ८ दिसम्बर को तमाम देश में विराट-सभाएँ हुईं। ऐसी ही एक सभा ल्फीडर इण्डस्ट्रियल स्कूल में हो रही थी, पुलिस ने सभास्थल पर धावा किया। पौन घंटे के भीतर सभास्थाल छोड़ने का आदेश पुलिस ने दिया। लेकिन डेलीगेटों ने पुलिस कमांडर को साफ कह दिया कि वे पुलिस की आज्ञा मानने को तैयार नहीं हैं। इसके बाद पुलिस ने फिर दस मिनट का समय सोचने के लिये दिया और उसके बाद सभा-भवन पर गोली चलाने की धमकी दी।

इस धमकी के अन्तिम शब्द अभी विलीन भी न हुये थे कि सिपाहियों को आज्ञा दी गई, 'निशाना लगाओ"। थोड़ी देर की खामोशी के बाद फायर होने लगे। गोलियों की एक ही बौछार से खिड़कियों के शीशे टूटकर चूर-चूर हो गए। भीतर से भी गोलियों की बौछारें होने लगीं। धीरे-धीरे बम भी बरसाये गए। इस भीषण बमवर्षा से सभा-भवन वालों ने आत्म-समर्पण कर दिया।

आन्दोलनों के इतिहास में यह पहिला ही अवसर था, जब कि किसी सभा पर गोलियाँ चलाई गईं। इस घटना से ही सशस्त्र-विद्रोह आरम्भ हुआ।

विद्रोह का आरम्भ

दस दिसम्बर से सशस्त्र-विद्रोह आरम्भ हुआ। मास्को की सड़कों पर खुलेआम-बमबाजी हुई। शान्तिमय सभाएँ गोलियों से भंग कर दी जाने लगीं। मशीनगनें गोलियाँ छोड़ने लगीं और तोपखाने गोले उगलने लगे। मास्को का सशस्त्र विद्रोह एक व्यापक विद्रोह हो गया। कुछ दिन तक मास्को की सड़कों पर खुला कत्ले आम होता रहा। कभी क्रान्तिकारी जीतते थे तो कभी पल्टन वाले। क्रान्तिकारियों ने फौजों को अपनी तरफ मिलाने का एक सुगम जरिया ढूँढ़ निकाला। जब फौजें क्रान्तिकारियों को दबाने घटना-स्थल पर आतीं, तो क्रान्तिकारी लोग उन्हें अपने पक्ष में मिलाने के लिए अपीलें निकालते थे। उन्हें इन अपीलों में काफी सफलता मिलती। सरकार का सेना पर काफी विश्वास नहीं था, क्योंकि ८ दिसम्बर को सेना की १ टुकड़ी जो क्रान्तिकारियों को दबाने के लिये भेजी गई थी, क्रान्ति-दल से मिलकर विपरीत मार करने लगी थी। १० तारीख को एक और सेना भेजी गई। सेना एक स्थान पर खड़ी थी। दो लड़कियाँ क्रान्ति का झंडा लेकर आगे बढ़ीं, और सिपाहियों के पास पहुँच कर कहने लगीं—'हमें मार डालो, लेकिन हम मैदान से पीछे नहीं हटेंगी।' इन लड़कियों की देशभक्ति और बलिदान को देखकर सैनिकों का सिर शर्म से नीचे झुक गया, उन्होंने अपने घोड़े लौटा दिये। सेना की जनता

के साथ अत्यधिक सहानुभूति थी। जनरल दबसब का कथन था—कि १५००० हज़ार सैनिकों में से दस हज़ार जनता के पक्ष के थे और बाकी ५ हजार सरकारी पक्ष के। सरकार और क्रान्तिकारियों का सबसे घमासान युद्ध प्रेसनिया स्थान में हुआ। मजदूरों की एक विशाल सेना ने सरकारी सेना का मुकाबला किया। सोवियट-काउन्सिल एक नई सरकार बन चली थी। प्रेसनिया और शचका ये दो जिले विद्रोहियों ने फतह कर लिये। १८ दिसम्बर को घमासान युद्ध हुआ और विद्रोही अच्छी तरह से परास्त कर दिये गये। मास्को की हड़ताल बन्द कर दी गई। रूस के अनेक नगरों में यह विद्रोह फैला हुआ था। रोडरोव-आन-डान की भी मजदूर सेना ने प्रबल विद्रोह किया। जैसे ही मास्को की खबर वहाँ पहुँची, वैसे ही वहाँ के मजदूरों और जनता ने एक सेना खड़ी कर ली। टमरनिक नामक नगर इस सेना का केन्द्र-स्थान था। सैकड़ों नवजवान आ-आकर इस सेना में भरती होने लगे। १५ दिसम्बर से २० दिसम्बर तक टमरनिक स्थान पर बराबर बमबाजी हुई। सरकार की तरफ से अनेकों प्रयत्न दबाने के निमित्त किये गये। परन्तु सरकार को उसमें सफलता नहीं मिली। क्रान्ति-कारियों ने धीरे-धीरे अपना शासन-विभाग खड़ा किया। एक जेलखाना भी बनाया गया, जिसमें बहुत से जासूस कैद कर दिये गए।

सरकार ने अपनी समस्त शक्ति विद्रोह के दबाने में लगा दी। नरमदल वाले पूरी तरह से विद्रोह की निन्दा कर रहे थे। इस सशस्त्र क्रान्ति में मजदूर भी पस्त पड़ गए। सरकार ने मौका देखकर मजदूरों को कुचलना आरम्भ कर दिया। लेनिन

ने शीघ्र ही अपना रूख बदल दिया। अतएव उसने ठंढे दिल से कार्य करना आरम्भ कर दिया।

सन् १९१७

सन् १९१७ ईस्वी में जब कि युद्ध की आग जोरों से जल रही थी, तभी लेनिन ने अपना काम जोरों से आरम्भ किया। तमाम सेनाएँ विद्रोही हो उठीं। लेनिन के साथियों ने राजमहल घेर कर जार को गद्दी से उतारे जाने का हुक्मनामा दिखाया। जार गद्दी से उतारे गये और उसके दूसरे दिन लेनिन की सरकार ने समस्त राजपरिवार को जिसमें रूस की महारानी, रूस के राजकुमार और छोटे-छोटे बच्चे थे, एक लाईन में खड़ा करवा के एक के बाद एक गोली से मरवा दिया। इसी दिन से रूस में बोलशेविक सरकार स्थापित हुई, जिसे मजदूर और किसानों की सरकार कहते हैं। इस सरकार को सोवियट सरकार भी कहते हैं। बोलशेविक सरकार ने रूस में आश्चर्यजनक-सुधार जारी किये। अपनी पंच-वर्षीय योजनाएँ बनाकर, दस वर्ष में ही रूस ने विराट लाल-सेना का संगठन किया। सैनिक-शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। मजदूर और किसानों को एक नवीन साँचे में ढाला गया। तात्पर्य यह कि रूस में गरीबी और अमीरी का भेदभाव मिटा दिया गया। सैकड़ों किसान और मजदूर सभाएँ स्थापित की गईं। यहाँ तक कि गिरजाघरों और मसजिदों में बड़ी २ लाइब्रेरियाँ खोल दी गईं। आज रूस का दावा है कि वह संसार के सभी शक्तिशाली राष्ट्रों से आगे है।



जर्मनी की राज्यक्रान्ति

सन् १९१४ के महत्वपूर्ण दिवस

किस्मत का फैसला

संसार के इतिहासों में सन् १९१४ के दिन बड़े ही महत्व के थे। सन् १९१४ ने यूरोप के समस्त राष्ट्रों की किस्मत का फैसला कर दिया। जर्मन सम्राट कैसर विलियम ने ता० ४ अगस्त को, अपनी जंगी सेनाओं को बेलजियम के मोर्चे पर भेजा था। जिस युद्ध की आवाज सुनकर आज भी हृदय काँप उठता है, वह यही विश्व व्यापी जर्मन महायुद्ध था, जिसमें लाखों वीर-सिपाहियों ने अपने-अपने देशों के लिये कुर्बानियाँ कीं। लाखों धराशायी हुए और हजारों वीर नारियों ने तथा छोटे-छोटे बच्चों ने अपूर्व आत्मोत्सर्ग कर अपनी अपूर्व देश-भक्ति और बलिदान का परिचय दिया था। इस विश्वव्यापी महायुद्ध ने संसार की किस्मत का फैसला ही कर दिया। युद्ध समाप्त भी न हो पाया था; उसकी चिनगारियाँ कहीं-कहीं प्रज्वलित ही हो रही थीं, कि कैसरी-शासन का तख्ता हिला, और पलट गया। जिस कैसर विलियम के नाम से संसार थर्रा उठा था, जिस नाम के लेते ही जर्मनी के बच्चे २ तलवार खींच लेते थे,—कौन जानता था, कि थोड़े ही दिनों में जर्मनी की किस्मत पलट जायगी, और कैसर को रोते हुए यहाँ से भागना पड़ेगा।

जर्मन-राजतन्त्र बड़ा ही संगठित और विशाल था, इसी युग में जर्मनी ने आशातीत सफलता प्राप्त की। अनेकों आविष्कार कर, संसार के राष्ट्रों को हिला दिया। प्रिन्स विस्मार्क जैसे राजनीति के धुरंधर विद्वान और जनरल हिन्डेनवर्ग सरीखे, कुशल सेनानायक को उत्पन्न कर जर्मनी ने एक बार संसार को चकित कर दिया। फ्रांस और इंगलैंड के दिल दहल उठे। बेलजियम भस्मीभूत हो गया और रूस ने भी गहरी पछाड़ खाई।

आर्थिक-प्रश्न

विश्वव्यापी युद्ध को छिड़े अभी एक ही वर्ष हुआ था। जर्मन सेनाएँ, रूस और मित्र राष्ट्रों की सेनाओं से जूझ रही थी। चारों तरफ भयंकर धुआँधार गोले छूट रहे थे। चारों तरफ सैनिकों की तलवारें चमक रही थीं। हजारों नहीं, कई लाख सेनाएँ मैदानों में पड़ी थीं—ऐसे भीषण समय में, देश में अकाल की भयंकरता ने जोर पकड़ा। चारों तरफ रोटी की हाय-हाय मच गई। 'युद्ध बन्द करो"—"युद्ध बन्द करो" की आवाजें चारों तरफ से गूँजने लगीं। जनता युद्ध का घोर विरोध करने लगी, संधि करने के लिये जोरदार आवाजें आने लगीं। सबसे प्रथम साम्यवादी दल आगे बढ़ा, और खुल्लमखुल्ला युद्ध की कड़ी आलोचनाएँ समाचार पत्रों में छपने लगीं। आर्थिक संकट में जर्मन जनता बुरी तरह फँस गई। युद्ध-क्षेत्रों में खाद्य-पदार्थों की कमी पड़ने लगी। कहीं-कहीं, जर्मन सेनाओं में विद्रोह के चिन्ह प्रकट होने लगे। जर्मन सेनाएँ जो प्रारम्भ में फ्रांस तक पहुँच चुकी थीं, और दूसरी तरफ पोलैण्ड की सीमा पर पहुँच कर

धुआँधार गोलाबारी करके आगे बढ़ रही थीं; एक दम पीछे हटने लगीं। ज्यों-ज्यों जर्मन सेनाएँ हारती गईं, त्यों-त्यों देश में विरोधी शक्ति बढ़ती गई। जर्मन शासक न युद्ध बन्द करने और न सन्धि करने को तैयार थे। इसी कारण जनता और शासकों में गहरा मतभेद हो गया।

अतएव जब विजय के चिन्ह एक के बाद एक लोप हो गए तो, सन् १९१६ ई० में स्पार्टकस लीग की स्थापना हुई। लीग का सर्वप्रथम उद्देश्य था, युद्ध का विरोध करना। शीघ्र ही एक भयंकर हड़ताल हुई, और मजदूरों ने कारखानों में काम करना बन्द कर दिया। इधर जर्मनी के दो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में गहरा मतभेद हो गया। लुडेनडोर्फ जो एक महान राजनीतिज्ञ था, उसकी धारणा थी कि २ माह के भीतर जर्मनी विजय प्राप्त करेगा। किन्तु इसके विपरीत चान्सलर 'बैथमैन-होलवेग'' का ख्याल था, कि जर्मनी को विजय मिलना असम्भव है। इन दो विरोधी ख्यालातों ने गुटबन्दियाँ आरम्भ कर दीं।

यहाँ यह परिवर्तन हो रहा था, तो दूसरी तरफ रूस में जारशाही के विरुद्ध भयंकर आग भड़क उठी, और देखते देखते ४८ घंटे के भीतर रूस के महान सम्राट के राज परिवार का खात्मा हो गया। संसार इस सफलता को देखकर चकित हो गया। बम के गोले की तरह जार का तख्ता उलट दिया गया। सम्राट और उसका समस्त परिवार गोलियों का शिकार बना दिया गया। इस भयंकर आग से सारा यूरोप चौकन्ना हो गया।

जर्मनी में भी क्रान्ति की आग फैली, हड़तालों की धूम मच गई। हड़ताल पर हड़ताल होने लगे। इस समय

मौका पाकर साम्यवादियों ने अपनी पार्टी मजबूत कर ली। सन् १९१७ के जुलाई मास में उनकी तरफ से राज सभा में एक प्रस्ताव पेश किया गया, जिसमें सन्धि करने की जोरदार आवाज थी। जर्मन-सम्राट परिस्थिति को अच्छी तरह समझ गया था। उसने शीघ्र ही जर्मनी को नवीन-सुधारों के देने की एक घोषणा की। परन्तु सन्धि-प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। प्रस्ताव की अवहेलना होने पर जनता में फिर असन्तोष की आग भड़की। चान्सलर बैथमैन ने अपने पद से इस्तिफा दे दिया। बैथमैन के अलग हो जाने पर जर्मनी के राजनैतिक दलों में भीषण हलचल मच गई। कैसर के आगे अब एक ही मार्ग था, और वह निरंकुश-सैनिक शासन की घोषणा करना। उसने शीघ्र ही प्रुशिया प्रान्त के एक अफसर को जिसका नाम मिकेलिस था, चान्सलर चुना। यह बड़ा जिद्दी शासक था। मिकेलिस ज्यों ही राजनैतिक स्टेज पर आया, त्योंही उसने प्रजातन्त्रवादियों का घोर दमन करना आरम्भ कर दिया। परन्तु प्रजातन्त्रवादी अपने दूने उत्साह से आगे बढ़े और मि० मिकेलिस की चांसलरी का घोर विरोध करने लगे। मिकेलिस अपने पद पर महीने भर ही रह सका, उसे भी अपने पद से शीघ्र स्तीफा देना पड़ा। इस बार कैसर ने काउन्ट-हर्टलिंग को चांसलर के पद पर नियुक्त किया। हर्टलिंग विलासी था, उसे दुनियाँ की कुछ भी फिक्र नहीं थी। ८ अगस्त सन् १९१७ को जर्मन सेना की एक बड़ी भारी पराजय हुई, उनके बढ़े हुए कदम उखड़ गए। इस महान् पराजय से जर्मन-राजसभा में निराशा छा गयी। अब जर्मनी के जीतने की रही-सही आशा भी सदा के लिये विलीन हो गई। जर्मन शासकों के चारों ओर घोर अंधकार छा गया। आगे

खाई थी और पीछे कुँआ। घर में जनता विद्रोह का एलान कर रही थी, और आगे युद्धक्षेत्रों में सिपाहियों का दम टूट चुका का। अब शासकों ने समझा कि युद्ध बन्द कर देना ही अच्छा है। जर्मन-जनता विप्लव नहीं चाही थी, वह अपने देश में जन-तन्त्रीय शासन की माँग पेश कर रही थी। बेडन के राजकुमार माक्स ने एक कैबिनेट को स्थापना की, इसमें साम्यवादियों के बहुत से प्रतिनिधि शामिल हुए। इस कैबिनेट के दो महान् उद्देश्य थे—पहिला देश में प्रजातन्त्र शासन की स्थापना और दोयम युद्ध को बन्द कर संधि करना। इस नवीन कैबिनेट के साथ देश की समस्त जनता थी। २८ अक्टूबर सन् १९१७ को एक महान घटना घटित हो गई। जर्मन के एक युद्धक्षेत्रीय बेड़े ने विद्रोह की घोषणा कर दी। दूसरे दिन पूरा बेड़ा गिरफ्तार कर लिया।

विद्रोह और प्रजातन्त्र की स्थापना

२८ अक्टूबर सन् १९१७ को जिस बेड़े ने विद्रोह किया था, उसके गिरफ्तार होते ही समस्त राजनैतिक क्षेत्रों के बेड़ों ने विद्रोह कर दिया। जनता ने विद्रोहियों का पूरा साथ दिया। बहुत से जंगी आफीसर और अधिकारी जो कुचलने की तैयारी में थे; गोलियों के शिकार बना दिये गए। बहुत शीघ्र ही यह क्रान्ति जर्मनी के समस्त भागों में फैल गई। सेना में प्रबल विद्रोह फैल गया। जनरलों और कमांडरों का आधिपत्य जाता रहा। सैनिकों ने उनके हुक्म ठुकरा दिए। राजपरिवार वाले घर छोड़-छोड़कर भागने लगे। एक के बाद एक सभी सरकारों ने इस्तिफे दे दिये।

सातवीं नवम्बर सन् १९१७ को प्रभावशाली नेता कर्ट इजनर ने बावेरिया प्रदेश में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी। दो चार दिन ही में सारे देश में सोवियट कायम कर दी गई। प्रजा-तन्त्रवादियों ने प्रथम विजय प्राप्त कर ली। बिना किसी तरह का खून बहाए निरंकुश-शासन का अन्त हो गया। न किसी को हाय हुई और न किसी के आँसू ही गिरे।

साम्यवादी-शासन की स्थापना

इस क्रान्ति ने युद्ध तो बन्द कर दिया, परन्तु साम्यवा-दियों में ऐसा कोई शक्तिशाली नेता न था, जो क्रान्ति का संचालन योग्य रीति से कर सकता। लेकिन साम्यवादी सोसाइटी ने अपनी कमजोरी बहुत शीघ्र दूर कर दी। एक प्रबल बहुमत बनाकर क्रान्ति का संचालन करने लगे। २८ वीं अक्टूबर को हर स्वीडमैन ने अपनी पार्टी की ओर से कैसर को राज्य-सिंहासन छोड़ने का अल्टीमेटम दिया। कैसर ने इस अल्टीमेटम की अवहेलना की। इस अवहेलना का परिणाम यह हुआ कि साम्यवादी, कैबिनेट से इस्तिफा देकर क्रान्तिदल में आ मिले। ९ नवम्बर को जब कैबिनेट की बैठक एक शान्तिमय कमरे में हो रही थी, उस समय साम्य-वादी नेता कमरे में घुस आए और वहाँ फौरन घोषणा कर दी, कि जनता शासन की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहती है। उसी समय राजकुमारी ने कैसर को सिंहासन छोड़ने के लिये आग्रह किया। राजकुमार ने अपने पद से इस्तिफा दे दिया। राजकुमार के बाद कैबिनेट का उत्तराधि-कारी एवट मार्क्स हुआ। एवट-मार्क्स जर्मनी का 'डिक्टेटर' बन बैठा। एवट-मार्क्स रूस के बोलशेविकों से अपने देश को

बचाना चाहता था। उसने स्वतन्त्र दल के सदस्यों से सहयोग की अपील की। १० नवम्बर को नया मन्त्रि-मंडल बनाया गया और ११ नवम्बर को जर्मनी ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

नवीन मन्त्रि-मंडल ने राष्ट्रीय सभा का शीघ्र ही चुनाव किया। 'वीमर' नामक स्थान में इस सभा की बैठक हुई। कैबिनेट ने अपने समस्त अधिकार राष्ट्रीय सभा को सौंप दिए। राष्ट्रीय सभा ने एवट को जर्मन प्रजातन्त्र का प्रसीडेण्ट चुना और हर स्वीडमैन को मन्त्री-मंडल का कार्यभार सौंपा। इस राष्ट्रीय सभा में तीन दलों के सदस्य शामिल किए गए। सरकार का दाहिना हाथ स्पार्टकस का दम उखड़ चुका था, फिर भी वह अपनी पार्टी के साथ अन्तिम श्वासें ले रहा था। साम्यवादी प्रबन्ध के लिए, राईनलैंड, सैक्सोनी और बवेरिया में आम हड़तालों की धूम मच गई। जर्मनी में किसानों और मजदूरों का बोलबाला हुआ। चारों तरफ लोग राष्ट्रीय गीत गाते नजर आने लगे। हड़तालों से सरकार परेशान हो गई। फौज और पुलिस में क्रान्तिकारियों के दमन करने की शक्ति न रही। ५ मार्च को जर्मनी में व्यापार-संघ की ओर से आम हड़ताल हुई। बर्लिन की सड़कें हड़तालियों से भर गईं। सारी जर्मन-जनता हड़तालियों के साथ सहयोग करने लगी। पुलिस ने जनता पर गोली चलाई, जिसके जवाब में जनता ने भी गोलियाँ चलानी आरम्भ कर दी। जर्मन वालंटियरों ने लिचटनवर्ग को अपने कब्जे में कर लिया। सरकार ने इस आन्दोलन को दबाने के लिये भरपूर बेरहमी के साथ काम लिया, जिससे तमाम मजदूर दल सरकार के विरोधी

बन गए। म्यूनिच में ईजनर को तलवार के घाट उतार कर मजदूर-प्रजातन्त्र की घोषणा की गई। कम्यूनिस्टों ने इस प्रजातन्त्र को दबाना चाहा, लेकिन वह दब न सका, उल्टा कम्यूनिस्ट शासन का ही अन्त हो गया। मेडनबर्ग-ड्रेसडन लीपजिग और ब्रान्सविक में बहुत सी खून खराबियां होने के बाद इस क्रान्तियुग का अन्त हुआ। प्रजातन्त्रवादियों ने अपने सभा की बैठक वीमर नामक स्थान में की। इस सभा में जो विधान तैयार हुए थे, उसे 'वीमर' विधान कहते हैं। जर्मन-प्रजातन्त्र में इस विधान का विशेष उल्लेख है। वीमर-विधानों ने जनता के समस्त अधिकार उसे सौंप दिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर कानून की एक सी दृष्टि रहेगी। स्त्री-पुरुष के अधिकार सभी समान भाव से सुरक्षित रखे गए। बोलने-लिखने और विचार-परामर्श का स्वतन्त्र-अधिकार जनता को दे दिया गया। राजनैतिक-धार्मिक और सामाजिक रुकावटें उठाकर जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई। वीमर-विधान ने मजदूरों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। इधर वीमर-विधान के बाद ही वार्सलीज की सन्धि हो गई।

वार्सलीज-सन्धि और जर्मनी

वार्सलीज की सन्धि हो जाने पर सभी जगह के युद्ध रोक दिए गए। संसार के किसी राजनीतिज्ञ ने इस सन्धि का समर्थन नहीं किया। इस सन्धि में लोरेन औ आलसेस प्रान्त जर्मनी को छोड़ने पड़े, और ऊपर से एक भारी रकम हर्जाने के तौर पर देनी पड़ी। यही नहीं जर्मनी को निशस्त्र कर सन्धि के कार्यकर्त्ताओं ने उसके उपनिवेश भी छीन लिए।

इस तरह जर्मनी के शत्रुओं ने जर्मनी को पूरा निकम्मा और दुर्बल बना देने में कोई भी कसर नहीं छोड़ी। जर्मनी की जनता के लिये, यह सन्धि एक अपमान-जनक सूचना थी। जर्मनी की जनता चाहती थी कि प्रजातन्त्र वाले, इस सन्धि को ठुकरा देंगे परन्तु ऐसा नहीं हुआ। जर्मन जनता अब प्रजातन्त्रीय शासन को भी गालियाँ देने लगी। बात स्पष्ट यह थी, कि एक तो महायुद्ध में जर्मनी शिथिल हो ही गया था, दूसरी तरफ उसे गृह-कलह ने और भी कमजोर बना दिया। जर्मन प्रजातन्त्रवाद को अब एक नवीन कठिनाई का सामना करना पड़ा, क्योंकि जनता की सहानुभूति धीरे-धीरे उसके ऊपर से उठने लगी।

१० जनवरी सन् १९२० ई० से सन्धि के नियम जर्मनी में लागू हुए। राईन प्रदेश जर्मनी के हाथ से निकल चुका था। फ्लेसवर्ग, डानजिग, मेमेल, अपरसिलेसिया तथा सार से भी इन्हें हाथ धोने पड़े थे। इस अन्यायी सन्धि से जर्मनी की जनता बहुत उत्तेजित थी। वह मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को घोर अपमान-सूचक शब्दों से स्वागत कर रही थी। इसी महीने में मजदूरों की काउन्सिल की स्थापना के लिये एक बिल पेश किया गया। स्वतन्त्र साम्यवादियों ने इसका घोर-विरोध कर एक भारी प्रदर्शन किया। सड़कों पर बहुत भीड़ लगा दी गई। सरकार ने गोली चलाने का आर्डर दिया। अब क्या था? स्वतन्त्र साम्यवादियों ने आम हड़ताल की घोषणा कर दी। परन्तु इसमें वे सफल न हो सके। प्रजातन्त्र के विरुद्ध जनता को देख १० मार्च को प्रेसिडेण्ट के सामने मि० लटविज ने सेना की माँगों को पेश किया। सेना की माँगें बहुत गरम थीं। लटविज अपनी

माँगों में असफल हुआ। अपनी माँगों को ठुकराई जाती हुई देखकर सेना के अफसरों ने एक नई चाल सोची। १२ वीं मार्च को बर्लिन के बाहर एक सेना तैयार की गई, जिसका उद्देश्य बर्लिन पर धावा करने का था। सरकार ने भी बर्लिन में अपनी सेना जमा की। परन्तु सरकारी सेना कुछ उदासीन सी थी, वह आक्रमणकारियों को रोकने में प्रायः असमर्थ दीख पड़ी। जब राष्ट्रीय कैबिनेट नेय ह हालत देखी, तो उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना ही नहीं रहा। राजधानी की रक्षा करना एकदम असम्भव हो गया। सारी कैबिनेट ने बर्लिन छोड़ दिया। विद्रोहियों की सेना ने १३ वीं तारीख को बर्लिन में प्रवेश किया। परन्तु उसे वहाँ एक भी सरकारी आदमी नहीं मिला। अप्रैल के मध्य में इस गृह-कलह का अन्त हुआ।

विद्रोह शान्त कर देने के बाद कैबिनेट का सुधार किया गया। प्रथम प्रजातन्त्रीय रीचस्टेग का चुनाव हुआ। हरमैन-मुलर चान्सलर चुना गया लेकिन मुलर की सरकार बहुत दिन तक काम नहीं कर सकी, उसपर अविश्वास का प्रस्ताव आया, और उसे इस्तिफा देना पड़ा। फैहरेन बेच ने नवीन सरकार का संगठन किया। इस समय जर्मनी के समक्ष हर्जाने की रकमों का प्रश्न बड़ा जोर पकड़ रहा था। अभीतक जर्मनी को यह नहीं बताया गया था, कि उसको कितनी रकम मित्र राष्ट्रों को भेंट करनी होगी। फ्रांस तो पागल था, वह दुनियाँ से जर्मनी का नामो-निशान मिटा ही देना चाहता था। जुलाई के महीने में मित्रराष्ट्रों ने अपनी माँगे जर्मनी के सामने पेश कीं। तीन महीने के बाद ब्रुसेल्स में फिर एक कान्फ्रेंस हुई, और मित्रराष्ट्रों ने अपनी

माँगे निश्चित कीं। ११,३०,००,००,००० पौंड जर्मनी से हर्जाने के तौर पर तलब किए गए। इसके बाद दूसरी शर्त में उसे निशस्त्र होने की ताकीद की गई। उसे सिर्फ एक लाख सिपाहियों के रखने की आज्ञा दी गई। क्रान्ति से बचने के लिये जो उसके विशेष सेफ-गार्ड थे, वे भी भंग कर दिये गये। पुलिस भी अधिक न रखने की आज्ञा जारी की गई। ये समस्त माँगें जर्मनी के आगे अल्टीमेटम के रूप में रख दी गईं। साथ ही उसे धमकी दी गई कि अगर उसने सन्धि की शर्तों का ठीक ठीक पालन नहीं किया, तो मित्रराष्ट्र उसकी भूमि पर कब्जा कर लेंगे और उसे लीग-आफ-नेशन्स से अलग रखेंगे।

जर्मनी की सरकार इस अल्टीमेटम को पाकर हाँ, या ना कुछ न कर सकी। वह अल्टीमेटम के उत्तर देने की तारीख तक खामोश बैठी रही। मित्रराष्ट्रों ने एक दूसरा अल्टीमेटम दिया। हर्जाने की रकम ६,६०,००,००,००० कर दी गई, साथ ही यह धमकी भी दी गई, कि वह इन माँगों को १२ मार्च तक स्वीकार करे नहीं तो फ्रांस की सेना रूर प्रान्त पर शीघ्र ही कब्जा कर लेगी। इस धमकी का परिणाम यह हुआ कि सात दिन के भीतर ही जर्मनी ने समस्त माँगों को स्वीकार कर लिया। यद्यपि जर्मन कैबिनेट ने मित्रराष्ट्रों की सारी शर्तें मान ली थीं, परन्तु आर्थिक कठिनाई की समस्या जर्मनी के आगे बड़े विचित्र ढंग से अड़ी थी। हर्जाने की समस्या ज़िंदगी और मौत का सवाल था। जर्मनी इतनी बड़ी रकम एकाएक अदा करने में असमर्थ था। डाक्टर वर्थ ने जो कैबिनेट के अर्थ-मन्त्री थे, एकदम स्तीफा दे दिया, क्योंकि समस्या बड़ी उलझन में थी। जर्मनी के सामने अब

एक ही रास्ता था, कि वह दिवालिया बन जावे। डाक्टर वर्थ फिर एक बार स्थिति सँभालने को आगे बढ़े, लेकिन उनसे फिर भी न सँभली। अब जर्मनी को दिवालिया बनने में सिर्फ ४ या ५ दिन की अवधि शेष थी। इस भयानक स्थिति को देखकर मित्रराष्ट्र घबड़ा गये। उन्होंने इंगलैंड के प्रधान मन्त्री लायडजार्ज के नेतृत्व में एक कान्फ्रेंस जिनेवा में बुलवाई, संसार के सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। परन्तु फ्रांस जर्मनी से पाई-पाई वसूल करना चाहता था। अगर कान्फ्रेंस में फ्रांस कड़ा रुख अख्तयार न करता, तो यूरोप की स्थिति में बहुत बड़ा सुधार हो जाता। लेकिन फ्रांस चाहता था कि जर्मनी बिलकुल कुचल दिया जावे, जिससे फिर कभी सर न उठा सके। इस कान्फ्रेंस में सिर्फ जर्मन और रूस की सन्धि अवश्य हो गई, लेकिन आर्थिक-स्थिति का कुछ भी निपटारा न हुआ। जर्मनी हर्जाने की रकम अदा करने के लिये कुछ समय की निश्चित अवधि चाहता था। फ्रांस ने एक दिन के लिये भी मोहलत देना ठीक नहीं समझा। इस समय जर्मन प्रजातन्त्र की अग्नि-परीक्षा हो रही थी। सन् १९२३ के आरम्भ में ही फ्रांसिसी सेना रूर प्रान्त पर कब्जा करने को रवाना हो गई। इस समय जर्मनी ने अपने हथियार मैदान में डाल दिये थे। वह अब लड़ने को तैयार न था। इसलिये उसने फ्रांस के साथ असहयोग का अस्त्र धारण किया। फ्रांस ने इस आन्दोलन का दमन बड़ी क्रूरता से किया। रूर प्रान्त में चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। व्यापार बिलकुल नष्ट हो गया। फ्रांस तो कह रहा था, कि जब तक जर्मनी हमारे आगे पूरी तरह से घुटने न टेक देगा, तबतक फ्रांसिसी सेना रूर प्रान्त से नहीं हटेगी। मित्र

राष्ट्रों में भी हर्जाने के प्रश्न पर एकता न थी। अतएव इंगलैंड ने तय किया कि हर्जाने का प्रश्न अर्थशास्त्रियों के हाथों में सौंपा जावे। अमेरिका भी यही चाहता था। इंगलैंड का प्रस्ताव पास हो गया, और विशेष-अर्थ-नीतिज्ञों के हाथों में हर्जाने का प्रश्न दे दिया गया। इसके लिये जो कमेटी बनाई गई वह डाज-कमेटी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस कमेटी ने आर्थिक परिस्थितियों को देख कर ही कार्य करना आरम्भ किया। कमेटी ने जहाँ तक हो सका बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उसने सिर्फ एक ही प्रश्न अपने सामने रक्खा, वह यह कि जर्मनी कितना हर्जाना दे सक्ता है और कबतक अदा करेगा। डाज कमेटी ने अपनी रिपोर्ट तैयार करके मित्र-राष्ट्रों के आगे रख दी। रिपोर्ट में जर्मनी का पक्ष जोरदार था। इससे एक छोटा सा गृह-कलह आरम्भ हो गया। इस गृह-कलह के बाद जर्मनी और मित्र-राष्ट्रों को डोज स्कीम स्वीकार करनी पड़ी।

सन् १९१९ में एवर्ट जर्मनी का प्रेसीडेन्ट था, उसने अपना कार्य बड़ी योग्यता से चलाया। सन् १९२५ ई० की २८ फरवरी को प्रेसीडेन्ट एवर्ट की मृत्यु हो गई। इसके बाद जर्मनी में दूसरा चुनाव हुआ। इस चुनाव में जनरल हिंडेन-बर्ग प्रेसीडेन्ट चुने गए। आप कैसर के दाहिने हाथ थे, और महान् देशभक्तों में इनकी गणना थी। गत महायुद्ध का समस्त भार इसी योद्धा पर निर्भर था। पहिले वह राजतन्त्र का प्रेसी-डेन्ट था और अब प्रजातन्त्र का दाहिना हाथ हो गया। हिंडे-नबर्ग यद्यपि बूढ़ा था, परन्तु उसने अपने कार्य को इस तरह चलाया कि समस्त जर्मनी ने प्रजातन्त्र के आगे घुटने टेक दिए। प्रजातन्त्र की यह महान् सफलता थी।

जिनेवा-प्रोटोकाल

फ्रांस और मित्रराष्ट्रों ने आपस में यह तय किया, कि यदि कोई राष्ट्र शांति भंग करने का उद्योग करेगा तो सभी राष्ट्र मिलकर उससे लोहा लेंगे। जिस समय यह संधि हुई थी, उस समय इंगलैंड में मजदूर दल का शासन था। जब मजदूर पार्टी का शासन इंगलैंड से हट गया, तो मि०मेक्डानल्ड ने इस प्रोटोकाल को मानने से इन्कार कर दिया। मि० चेम्बरलेन ने उस सन्धि को शीघ्र ही दफना दिया। सन् १९२५ ई० में फ्रांस का रुख भयंकर था। उसने अभी तक रूर प्रान्त से अपनी सेना को नहीं हटाया। जिनेवा प्रोटोकाल ने सभी राष्ट्रों की रक्षा का प्रबन्ध किया था, परन्तु जर्मनी के भाग्य का निपटारा अभी तक नहीं हुआ था। यदि यूरोप को सबसे अधिक राष्ट्र-रक्षा की फिकर करनी थी तो उसे जर्मनी की रक्षा पहिले करनी चाहिए थी। लेकिन जब चेम्बरलेन ने "प्रोटोकाल" को दफना दिया तो, सभी राष्ट्रों के सामने अपनी-अपनी रक्षा के लिये प्रश्न उपस्थित हो गए। फ्रांस को भी अपनी चिंता पड़ गई। इस परिस्थिति से जर्मनी ने लाभ उठाना चाहा। स्ट्रेटमैन जो कि वर्तमान जर्मनी का एक चतुर राजनीति-विशारद था, उसने फ्रांस और जर्मनी के बीच एक अलग सन्धि का प्रस्ताव रख दिया। इस सन्धि से फ्रांस की दशा बहुत बदल गई। उसे जर्मनी से अब भी बड़ा भारी खतरा था, और वह चाहता था कि सन्धि हो जावे। परन्तु उसे इस बात का ख्याल था, कि अगर जर्मनी से सन्धि हो जावेगी तो हमारी प्रेस्टिज कम हो जावेगी। दूसरी तरफ उसे यह भी ख्याल था, कि जर्मनी से सन्धि हो जाने पर उसके सभी प्रान्त सुरक्षित रह सकेंगे। यहाँ जर्मनी की भी यही धारणा थी कि फ्रांस से सन्धि होने

पर उसके सभी प्रांत सुरक्षित रहेंगे। अपना प्रस्ताव उपस्थित कर स्ट्रेटमैन ने एक नया गुल खिला दिया। मित्र राष्ट्रों में इस प्रस्ताव से फूट पैदा हो गई। जर्मनी के दिन अच्छे थे, इसी समय मि० ब्रियाण्ड फ्रांस के मन्त्री बने। मि० ब्रियाण्ड सन्धि के हामी थे, इससे शीघ्र ही दोनों देशों में "राईन-पैक्ट" के नाम का समझौता हो गया। सन् १९१९ में जर्मनी लीग आफ नेशन्स से निकाल दिया गया था, अब पुनः उसे लीग में शामिल होने को आग्रह किया गया। जिस फ्रांस ने जर्मनी को अपमानपूर्वक लीग से निकाल दिया था, अब उसे पुनः लीग में शामिल होने का न्योता दिया गया।

इसी समय संसार के छोटे-छोटे राष्ट्रों ने भी लीग में शामिल होने के लिये स्थायी स्थान की माँग पेश की। इस माँग में स्पेन, ब्राजील, चीन और पोलैंड देश शामिल हुए। इस माँग से बड़े-बड़े राष्ट्र घबड़ा गए, वे छोटे २ राष्ट्रों को स्थान देना उपयुक्त नहीं समझते थे। पोलैंड-स्पेन और चीन की माँगे ठुकरा दी गईं, किन्तु ब्राजील अपनी माँगों पर डटा रहा। जर्मनी लीग का मेम्बर बन गया, और उसे काउन्सिल में स्थायी स्थान दिया गया।

सन् १९२७ ई० में जर्मनी के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्ट्रेटमैन ने लीग आफ नेशन्स में यह प्रस्ताव रखा कि चूँकि जर्मनी अब निशस्त्र हो गया है, इसलिये अन्य राष्ट्रों को भी निशस्त्र हो जाना चाहिए। लेकिन प्रश्न का कुछ भी निपटारा नहीं हुआ। सिर्फ फ्रांस ने राईन की सीमा से अपनी सेना हटा ली। अब अमेरिका ने विश्व-शान्ति के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि का प्रस्ताव रक्खा, जिसका जर्मनी ने जोरों से समर्थन किया। स्वयं स्ट्रेटमैन सा० इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने

पेरिस गए थे। यद्यपि डाज कमेटी ने ऋण-समस्या को बहुत कुछ हल्का कर दिया था। फिर भी जर्मनी की कठिनाइयाँ इतनी अधिक थीं, कि वह उन शर्तों के पालन करने में बिलकुल असमर्थ था। इस समस्या को और भी सरल करने के लिये यंग नाम की एक कमेटी बनाई गई। इस कमेटी ने एक लम्बी योजना जर्मनी के समाने रक्खी। तरीके तो सब वही थे, लेकिन उन्हें तोड़-मरोड़ कर उनका रूपांतर कर दिया गया।

जनरल हिंडेनबर्ग के बाद ही जर्मनी में हिटलर का साम्राज्यवाद प्रारम्भ हुआ है।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति

किसानों की दरीद्रता का तांडव नृत्य, गरीबों का अपूर्व बलिदान—राजवंशों की विलासिता-अकर्मण्यता-धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों की करुण कहानियाँ

राज्यक्रांति का मूल कारण है, समाज और राजनैतिक-शासन की अव्यवस्था। जब किसी देश का समाज पतन की उच्च पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब लोग क्रांति की तरफ़ अग्रसर होते हैं, और समाज की दुर्दशा-राजनैतिक मंच पर आकर नाचने लगती है।

१८ वीं सदी का फ्रांसिसी इतिहास अत्यन्त रोमांचकारी है। प्राचीन राजवंशों ने अपनी विलासता के लिये, जनता को लूट-खसोट कर अपने खजाने भर लिये थे। किसानों में दरिद्रता की महामारी फैली हुई थी। भूख की प्रचंड ज्वाला से फ्रांसिसी-किसान, अधमरे हो रहे थे। अधिकारियों के मनमाने अत्याचारों से जनता में प्रतिशोध के भाव फैल रहे थे। कौन जानता था कि इन गरीबों की आहों की धधकती ज्वालाएँ एकदम प्रज्वलित होकर इन राजवंशों और धर्माधिकारियों की धर्मनिष्ठा और पापाचारों का अंत कर देगी।

हुआ भी ऐसा ही, शीघ्र, से शीघ्र जितनी जल्दी हो सका, मरी हुई प्रजा में दैवी-बल का चमत्कार प्रकट हुआ। १८ वीं सदी में फ्रांस की दशा बड़ी विचित्र थी। उसकी राजनीतिक अवस्था बहुत बड़ी उलझनों में फँसी हुई थी। किसी भाग पर रोमन लोगों का अधिकार था, तो किसी प्रान्त पर ग्रीक लोग कबजा जमाए बैठे थे। इसका कारण यह था कि फ्रांस पर १८वीं सदी से पहिले किसी एक सम्राट का राज्यशासन नहीं रहा। वह छिन्न-भिन्न दशाओं में रहा। विभिन्न प्रान्तों में, भिन्न-भिन्न राज्य-प्रणाली थी। परन्तु सन् १७८९ ई० में क्रांति की जो नवीन ज्वाला उठी, उसके बाद ही फ्रांस में सच्चे राष्ट्र की भावनाएँ जाग्रत हो उठीं। फ्रांस में उस समय धर्माधिकारीगण, राज्यवंश और जमींदारों का बोलबाला था।

धार्मिक और सामाजिक व्यावस्थाएँ

साधारण जनता में धर्माध्यक्षों का प्रभाव था। कहने को तो थे धर्माध्यक्ष, पुजारी और पुरोहित, परन्तु इनकी शान-शौकत बड़े-बड़े लार्डों से कम न थी। इनके भवन आनन्द के

रंगमहल थे। एक-एक के पास सेकड़ों नवयुवतियाँ थीं। व्यभिचार करना एक धर्म था। अब भी पाश्चात्य-देशों में व्यभिचार करना एक कला मानी जाती है।

राजनैतिक नियमानुसार जब किसी जमींदार की मृत्यु हो जाती थी तो उसके बड़े लड़के को ही सारी संपत्ति मिलती थी, शेष पुत्रों का उस संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता था। इससे अधिकांश जमींदारों के लड़के विशप बनते जाते थे, या सेना में भरती हो जाते थे। इसके सिवा उन्हें दूसरा कोई चारा ही नहीं था। धर्माध्यक्षों के समाज में जमींदारों का एक आली खान्दान भरा पड़ा था, जो विलासिता के लिये संसार में प्रसिद्ध था। ये विलासितायें धर्म के नाम पर की जाती थीं, और इस धर्म पर सतियों का सर्वस्व लूटा जाता था। गरीबों के खून से विशपों के महल रंगे जाते थे, और किसानों के अपूर्व बलिदानों से उनकी अमीरी के सितारे चमकते थे। आलसी, मुफ्तखोर और मजे से आनन्द लूटने वाले इन धर्माध्यक्षों की संख्या एक लाख तीस हजार के करीब थी। इन एक लाख तीस हजार धर्माध्यक्षों के लिये फ्रांस की जनता से करोड़ों-रुपये टैक्स के रूप में वसूल होते थे, जो धार्मिक नियमानुसार चर्चों में और विशपों को भेंट में देने पड़ते थे।

फ्रांस की जमींदारी प्रजा

इन धर्माधिकारियों के बाद प्रजा पर नंगे अत्याचार करने वालों में जमींदारों का समाज था। १८ वीं सदी में इन जमींदारों की संख्या १ लाख ५० हजार थी। ये जमींदार लोग दो भागों में विभक्त थे। एक समूह वह था, जो पेरिस में सम्राट के राजदरबारी-काउन्सिलर थे और सेनाध्यक्ष बन कर सम्राट

के राजमहलों में मौज करते थे। इनकी जमींदारी की देखरेख प्रायः इनके एजेन्टों द्वारा और किसी-किसी की सरकार की ओर से होती थी। दूसरे वह जमींदार थे, जो साधारण किसानों की तरह अपना ग्रामीण-जीवन व्यतीत करते थे। उपरोक्त जमींदारों से और इन साधारण जमींदारों से परस्पर फूट-ईर्षा और अधिक मात्रा में द्वेष था। राजकीय विभागों में ऊँचे-ऊँचे पदों पर शहरी जमींदार ही अधिक थे। गरीब जमींदारों और किसानों की तरफ से कोई भी प्रतिनिधि सम्राट के कैबिनेट में नहीं था। इसी कारण जमींदारों के दोनों समूहों में काफी वैमनस्य था।

फ्रांस की साधारण जनता

धन-शिक्षा-व्यापार और स्वतन्त्र कला में साधारण जनता उन्नति पर थी। इन साधारण व्यक्तियों में बड़े-बड़े कवि फिलॉसफर, लेखक-विद्वान और दार्शनिक सभी थे। इस श्रेणी में जीवन व्यतीय करने वाले लोग अधिक धनी थे। समय समय पर सम्राट इनसे कर्ज भी लेते थे। उस समय यूरोपीय अन्य देशों की अपेक्षा इन लोगों की दशा कहीं अधिक उन्नतिशील थी। फ्रांसिसी जनता अपना उन्नतिशील प्रगति को अच्छी तरह जानती थी, लेकिन उनकी बुद्धि बल और विद्या-पराक्रम का तेज, निकम्मे स्वार्थी और नीच जमींदारों की नीचताओं के आगे दबा था। यह दबदबा साधारण जनता को असहनीय था। वे अपनी पुकारें सम्राट तक भेजने में विवश थे। जनता की एक भी करुण-कहानी की आवाज सम्राट तक ले जाना, तलवार की धार पर खेलना था।

परन्तु इन लोगों में भी कुछ लोग ऐसे थे, जिन्होंने एक

अतुल धनराशि देकर सम्राट की कृपा खरीदी थी। उस समय रुपये देकर पद खरीदे जा सकते थे। सरकार को अच्छी रकम भेंट करने पर जजी, गेम्बरी, आदि सभी मिल सकती थी। पीढ़ी और दर पीढ़ी के लिये भी नौकरी खरीदी जाती थी। एक अतुल धनराशि देकर लोग जज बनकर मनमाने फैसले किया करते थे। योग्यता का प्रश्न ही न था, सिर्फ सवाल था धन का। जो जितना अधिक दे, वह उतना ही ऊँचा पद पाता था। इसी तरह साधारण जनता में दो भेद थे। एक पर सरकार की कृपा थी, दूसरी धनहीन और निर्बल थी, जो न सरकार की कृपा-पात्र थी और न अधिकारियों की ही। ये गरीब सिर्फ बलिदान के बकरे मात्र थे। इनको न समाज में स्थान था, और न राजनैतिक क्षेत्रों में ही इनकी पूछताछ थी। मध्यश्रेणी के लोग बड़े ही अभिमानी थे, ये अपने ही भाइयों से घृणा करते थे। इस तरह साधारण जनता की मध्यश्रेणी के लोगों की संख्या पचास हज़ार से ऊपर थी, जिनमें अधिकांश सम्राट के शासनाधिकारी ही थे।

किसान-समाज

सबसे अंतिम दरजे पर किसान समाज था। फ्रांस की आर्थिक नींव किसानों पर ही निर्भर थी। फ्रांस के सभी वर्गों को किसानों से अधिक सहायता मिलती थी। इतनी आर्थिक सहायता उसे किसी दूसरे समाज से नहीं मिलती थी। प्रायः सभी देशों की राष्ट्रीय संपत्ति भूमि-कर ही है। इसी भूमि-कर से समस्त राजकार्य और सेनाओं का संचालन होता है। राजाओं का तथा राज्यशासन का मूल धन ही भूमि-कर है। भूमि-कर वह टैक्स है, जो लगानरूप में, अति, वर्षे

किसानों को सरकारी खजानों में भरना पड़ता है। यद्यपि बहुत से टैक्सों से भी राज्य को आमदनी होती है, किन्तु उन करों से अगर सरकारी काम काज चलाया जावे तो, वह एक दो महीने ही में समाप्त हो जाता है। अतएव राष्ट्र के नींव की आधार किसान प्रजा ही है।

फ्रांस की किसान प्रजा, टैक्सों के बोझों से लद गई थी। १८ वीं सदी में, यह बोझ और भी अधिक हो गया। यूरोप के और किसी देशों के किसानों को इतना अधिक टैक्स नहीं देना पड़ता था जितना कि फ्रांस के किसान भुगत रहे थे। फ्रांसीसी किसानों को निम्नलिखित टैक्स भुगतने पड़ते थे।

(१) सम्राट का जमींदारी कर
(२) इनकम टैक्स
(३) श्रेणी अथवा जातीय टैक्स
(४) लगान
(५) ऑक्ट्राय टैक्स
(६) नमक कर
(७) जमींदारी कर
(८) गिरजाघर टैक्स

उपरोक्त समस्त करों में किसानों से लगान बड़ी भयंकरता और नीचता से वसूल किया जाता था। लगान वसूल करने का ढंग भी बड़ा विचित्र था। किसानों पर प्रति वर्ष सरकारी माँग के अनुसार हरएक गाँव पर लगान लाद दिया जाता था। सरकारी अधिकारी बड़ी बेरहमी से लगान वसूल करते थे। क्योंकि अधिकारियों को सरकारी माँग की पूर्ति के लिये सभी तरह की निर्दयता का उपयोग करना पड़ता था। अधिकांश किसानों की तमाम फसलें खजानों

में जमा हो जाती थीं, उनकी साल भर की पसीने की कमाई यों ही मुफ्त में लूट ली जाती थी, इससे किसानों को बड़ा असंतोष था। भीषण विद्रोह की ज्वाला इनके भीतर ही भीतर गूँज रही थी। जिनके नन्हें-नन्हें बच्चे, भूखों और नंगे बदन तड़पें, वे कहाँ तक धैर्य के भरोसे संतोष करते रहेंगे। वर्षों की घृणारूपी धधकती हुई आग और भूख की ज्वाला ने एक दिन सम्राट और उसकी समस्त स्वार्थमयी राजनीति को भस्मीभूत कर दिया।

'नमक कर'

फ्रांस के इतिहास में अगर कोई विशेष बात थी, तो वह "नमक कर" ही था, जो जनता पर एक सा लागू था। सरकारी कानून के अनुसार सात वर्ष के ऊपर की आयु वाले को ७ पौंड नमक प्रतिवर्ष खरीदना ही पड़ता था। अगर कोई इससे कम खरीदे तो वह दण्डनीय समझा जाता था। उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी। अन्य कार्यों के लिये अधिक नमक खरीदने के दूसरे नियम थे। नमक बेचने वालों का यह हाल था कि वे कीमत से दस गुनी कीमत पर माल बेचते थे। गरीब इस भयंकर टैक्स से अधिक दुःखी थे। गैर-कानूनी नमक बेचने और लेने वाले बड़े भारी अपराधी समझे जाते थे।

गिरजाघरों पर टैक्स

इस समय फ्रांस में कैथोलिक सम्प्रदाय का बहुमत था। अन्य सम्प्रदाय भी थे, परन्तु उनकी संख्या अल्प थी। इस सम्प्रदाय को कोई माने या न माने लेकिन अपनी आय का

दसवाँ हिस्सा गिरजाघरों को देना ही पड़ता था। यह कर सभी को समान रूप से भुगतना पड़ता था। एक समय था, जब इस आमदनी का रुपया गरीब-जनता की सेवा में लगाया जाता था। परन्तु अब अत्याचार के तांडव नृत्य में लगता था।

इनके सिवाय और भी टैक्सों का यही हाल था। जमींदारों के टैक्स उनके एजेन्ट बड़ी क्रूरता से वसूल करते थे। इस प्रकार साधारण प्रजा बड़े कष्ट में थी। इस अमानुषिक व्यवहार से किसानों का हृदय जमींदारों के प्रति उत्तेजित हो उठा। इस उत्तेजना का परिणाम यह हुआ कि यह आग ज्वालामुखी की तरह फूट निकली और सारा फ्रांस इस महान् अग्नि में भस्मीभूत हो गया। इस महान् क्रांति में जमींदारों का अस्तित्व सदा के लिये उठ गया।

फ्रांस का राज्य शासन और १५ वाँ लुई

क्रांति के पहिले, फ्रांस की सारी सत्ता बादशाह के हाथों में थी। उसे सभी तरह के अधिकार प्राप्त थे। राजा अपने राजत्व को ईश्वरीय अधिकार समझते थे। इन राजाओं ने अपने अधिकारों का सदा दुरुपयोग किया, और जमींदारों के हाथों की कठपुतली बनकर जनता पर मनमाना अत्याचार करते रहे। १८ वीं सदी में फ्रांस के राजे-महाराजे और जमींदार बड़े विलासी थे। राज्य का शासन-कार्य सभी मन्त्रियों के हाथों में था। साधारण जनता के जीवन की बागडोर मंत्रियों के हाथों में थी। ये मन्त्री राजकीय कार्य एक कैबिनेट के द्वारा चलाते थे। इस कैबिनेट में ६ मन्त्री और ३० सदस्य होते थे। इन सदस्यों में सभी सदस्य जमींदार और उच्च वंश के होते

थे। कुछ पदाधिकारी भी इस कैबिनेट में शामिल कर लिए जाते थे, जो एक ऊँची रकम देकर सरकार से पद खरीदते थे। तात्पर्य यह कि इस कैबिनेट में प्रजा-पक्ष के एक भी व्यक्ति को स्थान नहीं था।

१८ वीं सदी में फ्रेंच सम्राटों की विलास-प्रियता इतनी बढ़ बढ़ गई थी कि १७८३ ई० में ६०,००,००,००० सिक्के इन पर कर्ज था। इसका ब्याज २,५,०००,००० फ्रांक प्रति वर्ष देना पड़ता था। सबसे अधिक खर्च सम्राट के भोग-विलास की सामग्रियों का था। महलों को सजाने, सुन्दरियों को उपहार और मुसाहिबों को पेन्शन देने में तथा तरह-तरह के आनन्द-उत्सवों में किसानों की गाढ़ी कमाई का रुपया पानी की तरह बहा दिया जाता था। इस विलास-कानन का विरोध करना एक असंभव बात थी। जमींदार लोग कर से मुक्त थे, सभी तरह के टैक्सों का भुगतान जनता ही करती थी।

इस कारण सारे देश में हाहाकार मचा हुआ था। अन्यायियों का बोलबाला था, अन्याय का ताण्डव-नृत्य गरीबों की छाती पर हो रहा था।

न्याय विभाग

न्याय-विभाग की दशा बड़ी ही विचित्र थी। न्याय-पदों पर अधिकांश अशिक्षित विलासी जमींदार ही नियुक्त थे। मुकदमों का हारना-जीतना जजों की प्रसन्नता पर ही निर्भर था। न्याय की इस धाँधली से हजारों निर्दोष व्यक्ति जेलों में पड़े सड़ रहे थे। सैकड़ों घर अन्याय की भट्ठी में स्वाहा हो गये। फ्रेंच-सम्राटों ने अपने विरोधियों को गिरफ्तार करने के लिये बड़े ही सख्त कानून बनाये थे।

कागज के टुकड़े से आदमी गिरफ्तार कर लिये जाते थे। इसे बेनामी वारंट कहते थे। इस बेनामी वारंट से हजारों व्यक्ति एक ही रोज में पकड़े जा सकते थे और उन्हें न्यायालय में न्याय कराने का कोई अधिकार न था। धनी-मानी आदमी ऐसे वारंट खरीद लेते थे और अपने शत्रुओं को गिरफ्तार करा लेना उनके लिये एक सरल कार्य हो गया था। इसतरह पूँजीपतियों ने अपना विशेष-आतंक जनता पर जमा रक्खा था। इस बेनामी वारंट पर सिर्फ सम्राट के हस्ताक्षर रहते थे। अभियुक्त के नाम लिखने की जगह खाली होती थी। उस रिक्त स्थान में चाहे जिस व्यक्ति का नाम लिखकर कोई भी व्यक्ति उसे पकड़ सकता था।

प्रान्तीय और स्थानीय शासन

प्रान्तीय शासन में हरएक प्रान्त में एक-एक शासक नियुक्त था। आजकल के अनुसार ये गवर्नर और भारत के प्राचीन शाही जमाने के अनुसार सूबेदार कहलाते थे। इन्हें भी वही अधिकार प्राप्त थे, जो राजा के लिये होते थे। अपनी स्वतन्त्र इच्छा से ये राजकाज चलाते थे। इनका मुख्य उद्देश्य सिर्फ सरकारी खजाने को ही भरना था। पेरिस के राजमहलों में बैठकर ये गवर्नर खूब गुलछर्रे उड़ाते और राजमहलों में ही बैठकर राजकार्य करते थे। स्थानीय शासन ३४ विभागों में विभक्त था। हरएक विभाग में एक राजकर्मचारी नियुक्त था। ये ३४ राजकर्मचारी अपनी कठोरता निरंकुशता और स्वतन्त्र नीति से कानून बनाने में प्रसिद्ध थे। एक दिन में कई कानून बनाये जाते थे। सम्राट सिर्फ उनपर अपने हस्ताक्षर कर देना ही बड़ा भारी राज्यकार्य समझते

थे। अन्य छोटे-छोटे स्थानों में इन्हीं कर्मचारियों के प्रतिनिधि काम करते थे। ये प्रतिनिधि-गण भी अपने को प्रान्तीय शासकों से कम नहीं समझते थे।

फ्रांसमें सबसे स्वेच्छाचारी और निर्दयी सम्राट् १५ वाँ लुई था। इसके समय में व्यभिचार करना एक धर्म हो गया था। इसके रंगमहलों में बेशुमार परियाँ थीं, जो व्यभिचार के लिये रक्खी गई थीं। इसने समस्त राजकार्य मन्त्रियों पर छोड़ दिया था। मन्त्रियों ने अत्याचारों की मात्रा और अधिक बढ़ा दी। सारे देश में भीषण विद्रोह की ज्वाला धधकने के आसार दिखाई देने लगे। फ्रांस की परिस्थिति इतनी नाजुक हो गई कि १६ वें लुई के गद्दी पर बैठते ही यह आग सारे देश में भभक उठी।

क्रान्ति

१६ वाँ लुई जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय फ्रांस में विद्रोह अधिक जोरोंसे फैल चुका था। १६ वाँ लुई इस विद्रोह के भीतरी कारणोंको जानता था। उसे अच्छी तरह ज्ञात था कि राज्य शासन से जमींदारों का अस्तित्व उठा दिया जाय तो यह विद्रोह सहज ही में दबा दिया जा सकता है। १६ वाँ लुई, जमींदारों, धर्माध्यक्षों और पदाधिकारियों के अधिकारियों को समूल नष्ट कर देना चाहता था। किन्तु इस महान् कार्य के लिये एक महान् शक्ति और महान् हृदय की आवश्यकता थी। सेनाओं की बागडोर जमींदारों के हाथों में थी। लुई का हृदय इतना विशाल न था, कि वह इन चापलूसों की बातों का खुलेआम विरोध करे। फलतः उसकी समस्त आकांक्षाएँ दबी की दबी रह गयीं। [illegible]

आत्मा बहुत ही निर्बल थी, वह धर्माध्यक्षों और जमींदारों के हाथों का खिलौना था। जहां उसे उसके मित्र उसे जैसी बातें समझा देते थे, वह उन्हें मान लेता था। उसके इस भोलेपन से जमींदारों और चापलूस धर्माध्यक्षों ने अधिक लाभ उठाया। यह सभी कारण ऐसे थे जो फ्रांस की जनता को, कांटों की तरह खटकते थे।

इस तरह धीरे-धीरे दबी हुई आग भभक उठी, एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक प्रबल विद्रोह की आग धधक गई। सारा फ्रांस प्रज्वलित हो उठा। असंख्य नर-नारियाँ इस आग में भस्मीभूत हो गईं। १६ वाँ लुई और उसकी रानी मेरी भी क्रान्ति की महान् ज्वाला में भस्मीभूत हो गयीं। राजा और रानी विद्रोहियों द्वारा कत्ल कर दिये गये। इस क्रान्ति के बाद फ्रांस में शान्ति-स्थापना हुई। दुःख और अशान्ति के वातावरण में असह्य कष्ट भोगने वाली प्रजा ने सन्तोष की सांस ली।



कोरिया की राज्यक्रान्ति

साम्राज्यवादी जापानी—कोरिया में जापान के अत्याचार —प्रबल दमन नीति—जापानी-जाल में कोरिया।

कोरिया-प्रजातन्त्र

कोरिया जापान के पूर्व में एक छोटा सा देश है। जापान और कोरिया के बीच एक विशाल समुद्र दोनों को अलग-

अलग रखता है। आज से १०० वर्ष पहिले जापान एक छोटा-सा राष्ट्र था। वह संसार के एक कोने में पड़ा हुआ था। 'सभ्य संसार में उसे कोई जानता भी न था। धीरे-धीरे जापान ने आशातीत उन्नति प्राप्त की। गत महासमर में जब कि संसार की शक्तियाँ रणक्षेत्रों में जूझ रही थी। जापान अपनी व्यवसायिक उन्नति में आगे बढ़ रहा थी, दो शताब्दियों से जापान की जन-गणना बढ़ने लगी और उसने अपने विस्तार के लिये कोरिया पर आँखें लगाई। कोरिया के हड़प जाने की प्रबल नीति को उसने अख्तयार किया।

कोरिया छोटा-सा देश तो था ही। परन्तु उसमें भी राष्ट्रीयता थी। सन् १८७६ ई० में कुछ जापानियों को कोरियन लोगों ने मार डाला। फिर क्या था, जापान को एक अच्छा बहाना मिल गया। जापान ने कोरिया से छेड़छाड़ करनी आरम्भ कर दी। कोरिया ने अपनी शक्ति को देखते हुए जापान को कुछ समुद्री हक देकर आपस में समझौता कर लिया, परन्तु जापान से अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार करा ली। कोरियावासी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये आगे बढ़े, और अमेरिका से भी सन्धि कर ली। अमेरिका ने कोरिया को वचन दिया कि वह निर्बल राष्ट्रों की रक्षा के लिए हर समय तैयार रहेगा। सन् १८८४ ई० में कोरिया में भयंकर अकाल पड़ा। चारों तरफ घोर हाहाकार मच गया। कोरियन निवासियों ने दूतावास पर हमला किया। कई जापानी मारे गये। इस घटना से जापान को आक्रमण करने का पूरा अवसर मिल गया। कोरिया ने फिर भी कुछ ले देकर जापान से समझौता कर लिया। कोरिया को हड़पने [illegible]

जापान हर तरह से करने लगा, मगर चीन उसके रास्ते में बाधक था। कोरियामें जापानकी बढ़ती हुई ताकत को देखकर चीन ने अपने दस हजार सैनिक कोरिया में रख दिये। चीन एक तरह से कोरिया का संरक्षक था। चीन का यह प्रभुत्व देखकर जापान मन ही मन कुढ़ रहा था। जापान ने भीतर ही भीतर कोरिया में विद्रोह की आग फैला दी, और पीछे से विद्रोह दबाने के लिये अपने दस हजार सैनिक भेज दिए। कुछ समय बाद जापान ने अपनी नवीन शर्तों को मनाने के लिये कोरिया के बादशाह को दबाया। उसने कोरिया के बादशाह को लिखा कि चीन के समस्त सिपाहियों को निकाल बाहर करे और बहुत सी खानों तथा रेलवे सम्बन्धी अधिकार अपने हाथ में ले लिये। इसी समय चीन और जापान में बहुत कुछ मनमुटाव हो गया। चीन और जापान में भयंकर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में चीन पराजित हुआ। चीनी सेना कोरिया से हट गई। यह अवसर देखकर जापान ने कोरिया पर हाथ फेरने का विचार किया। उसने बहुत से सलाहकार कोरिया के बादशाह के पास अपनी संरक्षता के लिये भेजे; लेकिन कोरियन रानी ने इन नवीन शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। इसपर जापानी सेनाओं ने बादशाह के महल को घेर लिया। रानी मार डाली गई और बादशाह कैद कर लिया गया। जापान ने अपना एक शासक वहाँ भेज दिया। इसी समय जापान और रूस का मनमुटाव हो गया। बादशाह किसी तरह जापानियों की कैद से निकल भागा और रूस की शरण में जा पहुँचा। जापान रूस के मुकाबले में निर्बल था। इससे सहज ही में कोरिया जापान के शिकंजे से निकल गया। सन् १८८६ ई० में रूस, जापान और कोरिया में एक नवीन संधि स्थापित हो गई।

इस सन्धि से कोरिया को अपनी राष्ट्रीय शक्ति बढ़ाने का अपूर्व अवसर मिल गया। लेकिन यह प्रयत्न सफल न हो सका। जनता ने प्रजातन्त्र-प्रणाली की रचना की और स्वतन्त्र समाज की एक पार्टी स्थापित की, जिसका उद्देश्य कोरिया में प्रजातन्त्र शासन का स्थापित करना था। मि० फिलिप्स जैसन ने इस आंदोलन को जन्म दिया था। इसे विद्रोही समझकर कोरिया की सरकार ने १८७४ ई० में इसे देश से निर्वासित कर दिया। रूस, जपान और कोरिया की जब से सन्धि हुई, तब उसे फिर कोरिया में आने की आज्ञा मिल गई।

कोरिया का स्वतन्त्र-समाज

कोरिया का स्वतन्त्र समाज शुद्ध राष्ट्रीयता का प्रचारक था, यह नवीन प्रजातन्त्र शासन का स्थापना और पुराने रूढ़िवाद को उखाड़ फेंकना चाहता था। वह अपने देश को बाहरी संरक्षकता से बचाकर स्वावलंबी बनाना चाहता था। कोरिया की सैनिक-शिक्षा जापानियों के हाथों में थी। बादशाह इस सैनिक शिक्षा का भार रूस को देना चाहता था। स्वतन्त्र पार्टी ने इसका जोरों से विरोध किया और दस हजार आदमियों ने बादशाह के महल के पास जाकर विरोध का खूब प्रदर्शन किया। जबतक रूसी अफसर कोरिया से निकाल नहीं दिये गए, तबतक यह प्रदर्शन जोरों पर होता रहा। स्वतन्त्र पार्टी को इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ। मि० सिंग-मेनरी ने जो पार्टी का नेता था, यह माँग पेश की कि किसी भी विदेशी का प्रभाव कोरिया पर नहीं रहेगा। साथ ही साथ व्यापारिक सुविधाओं की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जावे। आज-

नीतिक अपराधियों को खुले न्यायालय में पेश किया जावे और उनके साथ न्याय किया जावे। मि० सिंगमेनरी की माँगों पर शासकों ने बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनता में आंदोलन की एक नई लहर उठ खड़ी हुई। सभाओं और प्रदर्शनों की धूम मच गई। बादशाह का सिंहासन डोल उठा, वह जनता की इस महान् शक्ति को कुचलने की तैयारी करने लगा।

सरकारी दमन

शीघ्र ही सरकार ने दमन करना आरम्भ कर दिया। स्वतन्त्र-पार्टी गैर-कानूनी घोषित कर दी गई और उसके बहुत से सदस्यों को पकड़ कर जेलों में ठूँस दिया गया। १७ नेता एकदम गिरफ्तार कर लिये गये। इन गिरफ्तारियों से जनता में अपूर्व उत्साह बढ़ा, और हजारों आदमी पुलिस चौकियों पर गिरफ्तार होने के लिये जमा हो गये। पुलिस स्टेशनों के आसपास हजारों आदमी "गिरफ्तार करो-गिरफ्तार करो" की आवाजें देने लगे। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सभी नेताओं को छोड़ दिया और उसकी माँगों को पूर्ण कर देने का वादा किया।

कुछ समय तक, बादशाह की प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिये जनता ने राह देखी। परन्तु बादशाह रूस के हाथों का खिलौना बना था। उसने उलटे पुलिस को जुलूसों, सभाओं आदि पर आक्रमण करने की खुली आज्ञाएं दे दीं। परन्तु कोरियन-पुलीस राष्ट्रीय भावों से भरी थी, उसने जनता पर गोलियाँ चलाने से इन्कार कर हथियार फेंक दिये। इसपर सरकार ने नयी फौजें बुलाकर पाशविक शक्ति द्वारा जनता के विचारों

को कुचल दिया। सभाएँ संगीनों द्वारा रोकी गईं, और सभी नेता फिर से गिरफ्तार कर लिये गए। इसी समय रूस और जापान का भयंकर युद्ध छिड़ गया। रूस का बाल्टिक बेड़ा जापान के बहादुर सिपाहियों ने डुबो दिया। इस बेड़े के डूबते ही रूस को अपूर्व क्षति उठानी पड़ी। छोटे से जापान ने रूस को पछाड़ दिया। इस महान् युद्ध ने कोरिया के भाग्य का भी फैसला कर दिया। कोरिया को भी जापान से एक सन्धि करनी पड़ी, जिससे अपने सौभाग्यनिर्णय के सभी अधिकार उसे जापान को सौंप देने पड़े। जापान को अपनी महत्वाकांक्षाएँ पू ी करने का अच्छा अवसर प्राप्त होगया। वह सभी विभागों में अपना प्रभुत्व कायम करने लगा। अनेक विभागों में जापानी नियुक्त कर दिये गए। जापान कोरिया की समस्त जागृति को कुचलना चाहता था। इसलिये उसने राष्ट्रीय आन्दोलन पर कड़ी निगरानी रखनी शुरू कर दी। जिन लोगों ने जापान की इस नीति का विरोध किया, उन्हें निर्वासन और कठिन कारावास का दण्ड मिला। जापान ने जापानियों को बसाने के लिये अनेक प्रयत्न किए तथा बहुतसी सुविधाएँ उनको दे दीं। सन् १९०५ ई० में कोरियन बादशाह के सामने जापान ने वैदेशिक नीति की अनेक शर्तें पेश कीं। इन शर्तों का विरोध कोरिया की जनता ने पूर्णरूप से किया। सम्राट भी इन नवीन शर्तों के विरुद्ध था। अतएव उसने अपना एक प्रतिनिधि अमेरिका के प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट के पास सहानुभूति प्राप्त करने के निमित्त भेजा। हेग कान्फ्रेंस में भी एक प्रतिनिधि भेजा गया। प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट ने कह दिया, कि जो राष्ट्र स्वावलंबी नहीं हैं, उनकी अमेरिका किसी भी तरह की मदद नहीं कर सकता। अतएव हरएक राष्ट्र को पहिले पूर्णतः

स्वावलंबी बनना चाहिए। इधर जब कोरियन सम्राट ने नवीन संधिपत्र पर दस्तखत करने से इन्कार कर दिया, तो जापान ने उसे गद्दी से उतार दिया। शासन का सारा कार्य जापानी रेज़ीडेन्ट के हाथ में सौंपा गया। इस तरह कोरिया की बची बचाई स्वाधीनता का भी अपहरण हो गया। जापान ने नाम-मात्र को उसी के एक वंशज को कोरिया की गद्दी पर बैठा दिया। परन्तु इसके हाथ में कोई अधिकार नहीं थे।

इस तरह जापान ने कोरिया की स्वाधीनता छीन ली, लेकिन उसके उठते हुए मनोविचारों को न कुचल सका। सन् १९०९ ई० में प्रिन्स ईरो नामक रेजिडेन्ट जनरल को एक कोरियन ने मार डाला। उसके स्थान में काउन्ट टिरोची रेजि-डेन्ट जनरल होकर आया। सारे देश में फौजी कानून लागू कर दिया गया। ८० हजार से भी अधिक देशभक्त जेल में ठूँस दिये गये। स्त्रियों और बच्चों पर भयंकर जुल्म किये गये। देश में चारों तरफ हाहाकार मच गया। हजारों कोरि-यन देश छोड़कर भाग गये। जापान के भयंकर अत्याचारों से पड़ित होकर कोरियन लोग जंगलों में छिपकर अपना संग-ठन करने लगे। वे मौका देखते ही जापानियों को मारकाट कर पहाड़ों में जा छिपते। जापान उन्हें कुचल डालने के लिये क्रुद्ध सर्प की तरह फुफकार उठा। देशभक्तों के मकान जला दिए गये, स्त्री और बच्चों को कोड़ों से पीटा गया। सैकड़ों कोरियन निर्वासित कर दिये गये। जेलों में नेताओं और देशभक्तों को नंगे करके कोड़े लगाये जाने लगे। जापान के इस भयंकर दमन से कोरिया में एक बड़ी ही भीषण विद्रोह की अग्नि धधकती दिखाई देने लगी—"मरता क्या न करता" यही धारणा कोरियन प्रजा की हो चली।

कोरिया और लीग ऑफ नेशन्स

यह छोटा सा द्वीप जापान के सामने अड़ गया। कोरियनों के साथ-साथ ईसाई भी कन्धा लगाते हुए आंदोलन को आगे बढ़ाते गए। ईसाई भी खुले हृदय से स्वतन्त्रता-संग्राम में पूर्ण आहुतियाँ देने लगे। सन् १९१८ में जनरल टिरौजी ने वहाँ के ईसाइयों के प्रति घोर अत्याचार करना शुरू कर दिया, जिससे ईसाई दुनियाँ में एक खलबली मच गई। एक गाँव में जापानियों ने आग लगा दी। गिरजाघरों को भस्म कर दिया और ईसाई जला डाले गए। कोरिया में जिस समय ये कुरबानियाँ हो रही थीं, उस समय अमेरिकन प्रेसिडेन्ट मि० विल्सन ने अपने १४ सिद्धांत संसार के सामने रखे उनमें एक यह भी था कि, प्रत्येक निर्बल राष्ट्र को आत्म-निर्णय का पूर्ण अधिकार होगा। उसमें कोई भी बलिष्ट राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यह सिद्धांत मि० विल्सन ही का नहीं, बल्कि लीग ऑफ नेशन्स का भी यही कानून था, कि छोटे-छोटे राष्ट्र गुलामी से मुक्त कर दिये जावें।

लीग ऑफ नेशन्स का यह सिद्धांत संसार के सामने केवल सैद्धान्तिक प्रदर्शन था, परन्तु उसे कार्यरूप में परिणत करने का साहस किसी को न था। कोरियन नेता पेरिस भागे और शांति-रक्षा के पुजारियों से न्याय के लिये अपीलें कीं! परन्तु आदर्शवाद के पुजारियों ने एक भी नहीं सुनी। निराशा में डूबे हुए कोरियन नेता कोरिया लौट आए। इस बच्चों के खेल से कोरिया को यह भलीभाँति ज्ञात होगया कि सिवाय उसके संसार में कोई दूसरा उसका रक्षा करनेवाला नहीं है। महायुद्ध के खतम होते ही शांति-रक्षा के पुजारियों की पोल खुल गई। मि० विल्सन के सभी सिद्धांत हवा में उड़ा दिए

गये। शान्ति की बातें सिर्फ हवाई ही रह गईं।

महायुद्ध के बाद शांन्ति-रक्षा के पुजारियों ने निर्बल राष्ट्रों को हड़प जाने का विचार-विनिमय किया। कोरिया यह भली भाँति जानता था, कि संसार उसका साथी नहीं है। उसे जो भी कुछ करना होगा, अपने पैरों पर खड़े होकर ही करना होगा। पेरिस में कोरियन प्रतिनिधि का अपमान और उसकी माँगों को ठुकरा देने से कोरियन बौखला उठे। कोरिया को यह भलीभाँति विदित था, कि वह जापान के मुकाबले में कुछ भी नहीं है। शस्त्र धारण करके क्रांति करना उसके लिये असंभव है। इस मार्ग को उसने छोड़कर सविनय-आज्ञा भंग और सत्याग्रह करने का निश्चय किया। इसमें अहिंसा को पूर्णरूप से स्थान दिया गया। कोरियन घोषणा के आवेदन-पत्र में लिखा था :—

"हम अपनी कठिन से कठिन सहन-शीलता और आत्म-संयम से अत्याचारियों के हृदय और पंजे को ढीला कर देंगें। हम जेल की यातनाएँ और मृत्यु का स्वागत करेंगे, लेकिन अत्याचार का उत्तर अत्याचार से नहीं देंगें। घोर दमन भी हमारे पथसे हमें विचलित न कर सकेगा। जो कोरिया निवासी अत्याचार और हिंसा का पालन न करेगा, वह देश का दुश्मन समझा जावेगा।

यह कार्य, सत्य, धर्म और स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिये ही किया जा रहा है। हमारा हरएक कार्य न्यायसंगत और प्रशंसनीय होगा। अतएव हमलोग पूर्ण प्रजातन्त्र की घोषणा करते हैं।"

स्वतन्त्रता का एलान

सन् १९१९ ई० में कोरियन नेताओं ने एक ही दिन में

गाँव-गाँव और शहर के कोने-कोने में प्रजातन्त्र का बिगुल फूँक दिया। इन नेताओं ने जो लगभग ३३ थे, जापानी कर्मचारियों को एक पार्टी दी और उसमें स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया। घोषणा-पत्र पढ़ने के बाद उनसे यह भी कहा गया कि अब आप पुलिस बुलाकर हमलोगों को गिरफ्तार कर लीजिए। उसी समय टेलीफोन से पुलिस बुलाई गई और ३३ नेता पकड़ कर जेल भेज दिए गए। स्वतन्त्रता की घोषणा के दिन अधिकांश-सरकारी कर्मचारियों ने स्तीफे दे दिए। वर्दियां फाड़कर फेंक दीं और राष्ट्रीय सरकार के कर्मचारी बन गए। जापान ने राष्ट्रीय झण्डा फहराने पर मृत्यु का दण्ड नियत किया था, लेकिन घोषणा के दिन हजारों पताकाएँ फहरा रहीं थीं। घर-घर बाजारों, मोटरों और प्रत्येक के हाथ में राष्ट्रीय झंडे थे। देश के दीवानों में अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वे इस सत्य पर मर मिटने को तैयार थे।

कोरियन बच्चा

मैंसी-मैंसी मैंसी

वन्दे मातरम् की तरह "मैंसी" शब्द कोरिया का राष्ट्रीय वन्देमातरम् है। एक जगह स्कूल का जलसा हो रहा था। बहुत से जापानी अफसर वहाँ उपस्थित थे। उस जलसे में से एक कोरियन १२ वर्ष का बच्चा निकला, और उसने अपने पाकेट से एक राष्ट्रीय झंडी निकाली और जापानी अफसरों को दिखाकर कहने लगा—"मैंसी"—"मैंसी" हमारा मुल्क हमें वापस दो—बालक की इस आवाज पर तमाम स्कूली लड़के भड़क उठे। सभी "मैंसी"-"मैंसी",

"मैंसी"-कहने लगे । सभी ने अपने २ सार्टीफिकेट फाड़कर फेंक दिए और चलते बने । जापानी अफ़सर उस बालक का देशप्रेम देखकर अवाक् रह गये । वह बालक यह अच्छी तरह जानता था कि जो अपराध मैं कर रहा हूँ—उसकी सजा फाँसी है। लेकिन वह अपने देश के लिये राष्ट्रीय भावों से भरा था—मौत क्या चीज है, वह जानता ही न था। इस तरह कोरिया ने आजादी पाई।

कोरियन राष्ट्रीय-आन्दोलन और जनता की सहानुभूति

जापान ने कोरिया में वही किया, जो जनरल डायर ने पंजाब में किया था। जापानी सिपाहियों को जुलूस भंग करने के लिये लाठियाँ, तलवारें आदि सभी दी गयीं। जेलें देशभक्तों से ठसाठस भर गया। यहाँ तक कि लोगों के कान तक काट कर छोड़ दिये गए। भयंकर से भयंकर अत्याचार जो जापान कर सका, किये। लेकिन इस अत्याचारों से कोरिया का उत्साह दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। वह अत्याचारों का सामना दृढ़ता से करने लगा। व्यापारी और दूकानदार सभी आन्दोलन के साथ थे, उन्हें अपनी दूकान का रत्ती भर परवाह नहीं थी। हफ्तों दूकानें बन्द रहीं। जापानी सिपाही दूकानों पर खड़े किये गए जिससे दूकानें बन्द न होने पावें। दूकानें खुलतीं थीं लेकिन ग्राहकों को चीजें नहीं मिलती थीं। स्कूल के छात्र और छात्राओं ने आंदोलन को जिस तरीके से चलाया और उसमें जो योग दिया वह कोरिया के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। छात्र और छात्रायें नगरों और बाजारों में झंडे लेकर निकलतीं, उनपर लाठियों की वर्षा होती और बाद में गिरफ्तार कर ली जाती थीं।

सियोल नामक स्थान में ३०० लड़के और १२० लड़कियाँ पकड़ी गईं। इन छात्र-छात्राओं ने पुलिस की नाकमें दम कर दिया। ये लोग चौकियों पर जाकर कहते थे हमें पकड़ो, हम राष्ट्रीय-प्रदर्शन करनेवाले हैं। कोरिया के आन्दोलन में एक विशेष सराहने योग्य बात देखने में आई और वह यह कि लोग गिरफ्तार होने के लिये स्वयं पुलिसि स्टेशनों पर पहुँचते थे। वे भारी तायदाद में पकड़े जाते थे। हमारे देश की तरह पुलिस गिरफ्तारी के लिये जमीन आसमान एक नहीं करती थी।—सैकड़ों स्त्रियाँ जेल गईं। उनपर लाठियाँ चलाई गईं, नंगा करने की कोशिश की गई, लेकिन उन्होंने इतने चुस्त कपड़े बनवाये थे, कि जाँघों से सटे रहते थे। उतारने में बड़ी दिक्कत होती थी। बहुत सी लड़कियों के साथ जेल में दुर्व्यवहार किया गया। परिणाम यह हुआ कि माताओं और बहनों की इस तरह बेइज्जती देखकर कोरियन मरने पर उतारू हो गये। यही आग की चिनगारी साम्राज्यवाद और जापानी नीति की विध्वंसक हो गई।

एक अमेरिकन कर्मचारी का बयान

कोरियन जेलखानों के बाबत एक अमेरिकन कर्मचारी का कहना है कि जेल और जेल के बाहर अमानुषिक अत्याचार होते थे। कैदी खंभों से नंगे बाँध दिये जाते और उनके बदन पर इतने कोड़े लगाए जाते कि वे बेहोश तक हो जाते थे। बेहोश होने पर वे होश में लाए जाते थे, और होश में आते ही उनपर फिर मार पड़ती थी। विश्वस्तसूत्र से यह भी ज्ञात किया गया कि बहुत से लोगों के हाथ पैर तक टूट गए। स्त्रियों और पुरुषों के अतिरिक्त नन्हें-नन्हें बच्चे संगीनें भोंक

कर मार डाले गए। फिर भी कोरिया ने जापान की दमन-नीति का शान्तिमय तरीकों से उत्तर दिया। शान्तिमय वाता-वरण और ईसाई नेताओं के असीम उत्साह और उपदेशों से रक्त की नदियाँ नहीं बहीं।—

कोरिया का अपूर्व बलिदान

कोरिया ने १,६६,००० हजार देशभक्तों को जेल में भेजा। जिनमें से करीब ८००० के ऊपर मुकदमे चले, बाकी यों ही जेलों में सड़ते रहे। जापानी गवर्नरों को यह हुक्म दिया गया कि प्रत्येक राष्ट्रवादी को दस साल की सजा दी जावे। किन्तु कोरियन ऐसी धमकी से नहीं डरे। राष्ट्रवादियों ने इस धमकी का उत्तर शीघ्र ही जापान को दिया कि अगर इस तरह हमारे आन्दोलन को कुचला जावेगा, तो हम अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करने में कोई कसर नहीं रखेंगे। कोरिया का प्रत्येक व्यक्ति इस अमूल्य सिद्धान्त पर मर मिटेगा। कोरिया का उत्तर न्याय-संगत था, इस उत्तर को सुनकर जापान ने अपना रुख बदल दिया और अन्ततः उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार करनी ही पड़ी।



आयरलैण्ड की राज्य-क्रान्ति

आयरलैण्ड का प्रजातन्त्र

आयरलैण्ड ने अपनी स्वतन्त्रता के लिये खून बहाकर मानवता का एक महान् आदर्श संसार के आगे रक्खा

है। आयरलैण्ड का कहना था कि हम कुछ नहीं चाहते, हम मानवता का जीवन चाहते हैं। मनुष्य में मानवता का विकास और मनोरम शान्तिमय मनुष्य सरीखा हृदय चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि निरपराध व्यक्तियों का खून बहाया जाकर हम मनुष्यता प्राप्त करें। किन्तु अगर हमारी माँगों को ठुकराया जायगा, तो हमें विवश होकर उन उपायों को काम में लाना पड़ेगा, जिनसे हमारी घृणा है। देश उसी के देशवासियों का है। किसी भी जाति का यह अधिकार नहीं है, कि वह दूसरों की रोटी पर अपना हक जमावे।

जनरल-मैक्सविनी

आयरलैण्ड के प्रबल जागृति के दिन सन् १६१४ से प्रारंभ होते है, जब कि महासागर के काले बादल उमड़ चुके थे। आयरलैण्ड ब्रिट्रेन की मदद के लिये तैयार हो गया था, लेकिन आयरिश नेताओं ने समय देखकर अंग्रेजों को सहायता देने से हाथ खींच लिया। क्योंकि उन्होंने परिस्थिति का अध्यन कर अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सबसे अच्छा मौका यही पाया। अँग्रेजों के विरुद्ध शीघ्र ही प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया गया। आयरिश युवकों ने भीषण-विद्रोह करके डबलिन पर आक्रमण किया, लेकिन वे सफलता नहीं पा सके। अँग्रेजों के भीषण तोपखाने के आगे वे ठहर नहीं सके। इस विद्रोह में १५ विद्रोहियों को फाँसी की सजा दी गई और ५०० युवक जेल में ठूँस दिए गए। युवक ने भीषण दमन के आगे आत्म-समर्पण कर दिया। यद्यपि आयरलैण्ड की समस्त जनता इस विद्रोह के पक्ष में न थी, लेकिन अँग्रेजों के भीषण दमन ने उसे विद्रोह करने पर विवश किया। इस दावानल से आयरिश प्रजा अँग्रेजों के

विरुद्ध हो गई। जो कल विद्रोहियों की निन्दा किया करती थी, दूसरे दिन वही उन विद्रहियों को स्वतन्त्रता का देवता मानने लगी।

महात्मा–पियर्स

आयरलैंड की आजादी के दीवाने महात्मा-पियर्स थे। महात्मा पियर्स एक अद्भुत महापुरुष थे। उनकी अलौकिक वीरता, अपूर्व देश-भक्ति और समाज सेवाओं से नवयुवकों में अपूर्व जाग्रति फैल चुकी थी। पियर्स की धर्मपत्नी एक वीर महिला थी। वह अपने पति से एक कदम आगे थी। उसने नवयुवकों और साधारण प्रजा में स्वतन्त्रता की आग फूँक दी थी। पियर्स और उनकी धर्मपत्नी का उठाया हुआ आन्दोलन दिनोदिन जोर पकड़ने लगा।

इसी समय ग्रिफिथ नाम के एक और महापुरुष ने "सिन-फिन"–दल का संगठन कर आन्दोलन को जोरों से बढ़ाया। ग्रिफिथ के साथियों में से जिन्होंने स्वाधीनता के महान-यज्ञ में अपनी कुरबानी की थी, लाईकेल्स, एलिन्स, महात्मा-मेक्सि-विनी और डीवेलेरा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।—यद्यपि सन् १८१८ ई० डा० डिपुगिस हेयी ने "मोलिग-लीग" की स्थापना शिल्प और औद्योगिक उन्नति के लिये की थी, परन्तु लीग ने यह अनुभव किया कि बिना स्वतन्त्रता के प्राप्त किये न तो शिल्प ही में उन्नति हो सक्ती है; और न औद्योगिक शक्ति ही देश को मिल सकेगी! इसलिये लीग ने राजनैतिक क्षेत्र में आकर अँग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया। ग्रिफिथ ने अपनी ज्वालामयी लेखनी से आयरलैण्ड के कोने-कोने में स्वतन्त्रता का मूल-मन्त्र फूँक दिया। थोड़े ही दिनों में स्वतन्त्रता के लिये सारा देश पागल हो उठा।

सन् १९१८ ई० में लार्ड फ्रेंच आयरलैंड के नए वायसराय बनाकर भेजे गए। मि० शरट और मि० आर० मेकफर्सन चीफ-सेक्रेटरी नियुक्त हुए। इन लोगों ने फिर भीषण दमन शुरू किया। मई से लेकर दिसम्बर तक आधे सिनफिन नेता पकड़कर कैद कर लिए गए। परन्तु आन्दोलन जरा भी शिथिल नहीं हुआ। बचे हुए सिनफिन नेताओं ने पूर्ण प्रजातन्त्र की योजनाओं की घोषणा की। सन् १९१९ की २४ वीं जनवरी को समस्त सिनफिन लीडरों ने आइरिश पार्लियामेंट द्वारा प्रजातन्त्र की अधीनता स्वीकृत करा ली। मि० डी वेलेरा इस प्रजातन्त्र के सबसे पहिले राष्ट्रपति चुने गये।

डी वेलेरा और प्रजातन्त्रीय-सरकार

डी वेलेरा के हाथ में शासन-सूत्र आते ही अलग-अलग विभागों के मन्त्रियों की नियुक्ति हुई। इसके बाद एक विराट सेना का भी संगठन हुआ। बहुत से आइरिशों ने स्वाधीनता के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। आयरिश सरकार ने सबसे पहिले अर्थ-संग्रह की ओर विशेष ध्यान दिया। २,५०,००० पौंड सर्वसाधारण से और १०,००,००० पौंड अमेरिका-प्रवासी आयरिश भाइयों से ऋण-स्वरूप लिए गए। इस कार्य में माँग से अधिक रुपया सरकार को मिल गया। आयरलैण्ड की जनता ने ढाई लाख पौंड की जगह चार लाख पौंड और अमेरिकन प्रवासी आयरिशों ने दस लाख की जगह एक करोड़ डालर प्रदान किया।—इस धन से शीघ्र ही आयर्लैण्ड में नवीन युग का आरम्भ हुआ।

(१) पंचायती अदालतें खोल दी गईं।

(२) स्वतन्त्र पुलिस विभाग की स्थापना हुई।

(३) प्रजातन्त्रीय अदालतें स्थापित की गयीं।
(४) स्वयं-सेवकों का सङ्गठन किया गया।
(५) किसान सभाओं की स्थापना हुई।
(५) वाचनालाओं और अस्पतालों की अधिक वृद्धि की गयी।
(७) ग्रामों में प्रजातन्त्र के संदेश का प्रसार किया गया।
(८) पाठशालाओं में स्वतन्त्र शिक्षा का प्रबन्ध हुआ।
(९) नव-जवानों की सभा और उनके संगठन की नींव डाली गयी।
(१०) जमींदारी प्रथाओं का विरोध किया गया।

प्रजातन्त्रीय सरकार की इस नवीन शासन-प्रणाली से अँग्रेज सरकार का दिवाला निकल गया। सरकारी अदा-लतों में चूले डंड पेलने लगे। नवीन पुलिस का प्रबन्ध इतना अच्छा होने लगा कि अँग्रेज सरकार की मातहत पुलिस झक मारने लगी। प्रायः सभी मामले प्रजातन्त्रीय पुलिस के हाथों में आने लगे। पुलिस का व्यवहार अँग्रेजी पुलिस से कहीं अधिक अच्छा था। सैकड़ों स्वयंसेवक पुलिस विभाग में भरती होकर अपनी अपूर्व देशभक्ति का परिचय देने लगे। विभाग द्वारा सबसे अच्छा शासन होने लगा। और जनता भी सरकार का पूर्णरूप से साथ देने लगी। वकीलों और बैरिस्टरों ने अँग्रेजी अदालतें छोड़कर प्रजातन्त्रीय अदालतों में प्रैक्टिस आरम्भ कर दी। अदालत और पुलिस का प्रबन्ध कर लेने पर जमींदारी-प्रथा के विरुद्ध घोर आन्दोलन शुरू किया गया। आयरलैंड में पहिले जमींदारी अँग्रेजों के हाथ में थी। प्रायः सभी जमींदार अँग्रेज लोग ही थे। इन अँग्रेज जमींदारों के अत्याचारों से सभी आयरिश प्रजा

दाने-दाने को मुहताज थी। विदेशी अँग्रेज सैकड़ों एकड़—जमीन के मालिक बनकर आराम से मौज कर रहे थे। धन-वान की नजरों में आयरिश किसान जानवरों के तुल्य थे। इस महान् आन्दोलन की जाग्रति से आयरिशों में यह हृदय-कामना जोरों से प्रज्वलित हो उठी कि जहाँ तक हो शीघ्र ही इस पार्टी का अन्त कर दिया जावे और आयरलैण्ड की भूमि गोरे जमींदारों से स्वतन्त्र कर दी जावे। इस जमींदारी आन्दोलन ने बहुत शीघ्र ही जोर पकड़ लिया। सारी पुरानी व्यवस्थाएँ नेस्तनाबूद कर दीं गईं, और गोरे लोगों से जमीं-दारी छीन ली। जन संख्या के अनुसार जमीनें किसानों को बाँट दी गईं। इस आन्दोलन में आयरिश प्रजातन्त्र को काफी सफलता मिली।

युद्ध की प्रगति

इस आन्दोलन के साथ ही प्रजातन्त्रीय फौजों ने अँग्रेजों के साथ युद्ध छेड़ दिया। अँग्रेज-बैरिकें और पुलिस के अड्डे नष्ट कर दिये गए। एक ही दिन में तमाम देश के इन्कमटैक्स दफ्तरों में आग लगा दी गई। अँग्रेजी कस्टम हाऊस भी जलाकर खाक कर दिया गया। अचानक आक्र-मणों से अँग्रेजी छावनियाँ नष्ट की जाने लगीं। अँग्रेज सी० आई० डी० कत्ल किये जाने लगे।

वीर ब्रियन—

इस आन्दोलन (गोरिल्ला वार) में वीर ब्रियन ने बड़े साहस से काम किया। वीर ब्रियन—आजादी का दीवाना, साहसी और परिश्रमी युवक था। इस युवक के अद्भुत

कारनामों को पढ़कर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। सचमुच आयरलैण्ड के स्वाधीनता-संग्राम में आयरिश प्रजा ने वीर ब्रियत के चरणों में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। वीर-ब्रियन के कठिन परिश्रम ने देश भर में हड़तालों का बिगुल फूँक दिया। समुद्री किनारों पर खलासियों की जंगी हड़तालें होने लगीं। अँग्रेजी जहाज हथियारों से भरे किनारों पर मुँह-बाए खड़े रहे। खलासी लोग तालियाँ बजा-बजाकर उन्हें चिढ़ाने लगे। जहाजों से रसद और माल के ढोने वालों की हड़तालों ने अँग्रेजों को काफी परेशान कर दिया। रेल द्वारा पल्टनें भेजने की भी सुगमता सरकार के पास नहीं थी। समस्त रेलवे कर्मचारियों ने हड़तालें कर दी थीं। सिर्फ इने गिने अँग्रेज लोग ही रेलवे में काम करते दिखलाई देते थे।—

समर के बाद

इस समय यूरोपीय महासमर खतम हो चुका था। अब सरकार का रुख आयर्लैण्ड की तरफ गया। वह अपनी बची हुई ताक़त को इन गुलामों पर आजमाने लगी। समस्त पाशविक शक्ति आयर्लैण्ड पर टूट पड़ी। क्रामवेल और पिट जो कार्य नहीं कर सके उसे अंग्रेजी सरकार पूर्णरूप से करने पर उतारू हो गई। आयर्लैण्ड को संसार के पर्दे से मिटा देने के लिये सरकार तन-मन-धन से उसे कुचलने लगी। सारी अंग्रेज जाति आयर्लैण्ड पर टूट पड़ी। शीघ्र ही १४००० नवजवान पुलिस में भर्ती कर लिये गए। ५५,००० सैनिक साम्राज्य रक्षा के लिये रिजर्व कर लिये गये। सभी बन्दरगाहों पर फौजें और पुलिस खड़ी कर दी गई। इस किले-

बन्दी के बाद आयरलैण्ड की छाती पर धुआँधार बम के गोले बरसाए जाने लगे। रक्त की नदियाँ बहाई जाने लगीं। दना-दन गोलियों की बौछारों में अपराधी और निरपराधी सभी स्वाहा होने लगे। गाँव के गाँव जला दिये गये। इस तरह सार्वभौम कत्लेआम का नजारा दिखाई देने लगा। समस्त आयर्लैण्ड श्मशानवत् दिखाई देने लगा।

केवल इतने से ही अंग्रेजों को संतोष नहीं हुआ, तोपों और मशीनगनों से आयर्लैण्ड की भूमि पाट दी गई। दूसरी तरफ कानूनी शिकंजे में जनता जकड़ी जाने लगी। दो कानून शीघ्र ही बनाए गये।

इन चारों कानूनों से आयर्लैण्ड में कानूनों का बोलबाला हुआ। प्रेस एक्ट के जरिए सभी अखबार बन्द कर दिये गये सभी सार्वजनिक संस्थाएँ बन्द कर दी गईं। बहुत से बैंक गैरकानूनी करार दिये गये। सैकड़ों नवजवान जेलों में ठूँस दिये गये। शान्ति रक्षा के नाम पर कितने ही भले आदमियों का सर्वनाश कर दिया गया। प्रजातंत्रवादी पब्लिक सिनेट के ६५ नेताओं को पकड़कर जेल में भेज दिया गया। इस महायज्ञ में कितने ही वीर-पुरुषों को आहुति देनी पड़ी, जिनमें मेजर क्रासी और महात्मा मैक्सविनी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

शहीद महात्मा मैक्सविनी

महात्मा मैक्सविनी आयर्लैण्ड की अमर-आत्मा थी। मैक्सविनी की अमर लेखनी, मैक्सविनी की अमृत-तुल्य अमर-वाणी और उस महापुरुष की वीरता, धीरता और गम्भीरता से सारा देश प्रभावित था। महात्मा मैक्सविनी

अंग्रेजों के जेल में ७० दिन तक उपवास कर अपनी अमर शांति मय वृत्ति का परिचय समस्त यूरोप को ही नहीं संसार को दे गए। इस महान् सभ्यता के युग में यूरोप के राजनीतिक अत्याचारों के विरोध में महात्मा मैक्सविनी ही सब से प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने ७० दिन तक उपवास करके अपनी अध्यात्मिक शक्ति का संदेश दिया।

स्वाधीनता संग्राम में स्वतन्त्रता के लिये कितना खून बहाया, यह एक छोटे से देश ने संसार को दिखला दिया। इस महायज्ञ के बाद सिनफिन दल को यह मालूम हो गया कि बिना प्राणों की बाजी लगाए देश कभी भी स्वतंत्र न होगा। इस तरह देश का हर-एक नवयुवक अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिये तैयार हो गया। इस अलौकिक त्याग और निर्भीकतापूर्वक मृत्यु को आलिंगन करने वाले वीरों के आगे प्रधान मंत्री लायड जार्ज को झुकना पड़ा, और प्रजातन्त्रवाद की अनेकों मागों में से कुछ कुछ मांगे मंजूर कर ली गईं। आयर्लैण्ड की मागों पर विचार करने के लिये उन्होंने शीघ्र ही डी वेलेरा और सर जेम्स-क्रेग को निमन्त्रण देकर इंगलैण्ड बुलाया। एक सप्ताह तक विचार-विनिमय होता रहा। लेकिन प्रधान मन्त्री ने जो अपनी शर्तें आयर्लैण्ड के समक्ष रक्खीं। वे स्वतन्त्रता देने से कोसों दूर थीं, इसलिये डी वेलेरा ने उन्हें मानने से इन्कार कर दिया। उन शर्तों में न तो स्वाधीनता का आदर्श था, और न स्वाधीनता विकास के लिये कोई नवीन योजना ही थी। डी वेलेरा वापस आयर्लैण्ड आ गये।

अन्त में अंग्रेजों ने जब देखा कि आयर्लैण्ड की प्रजा बिना स्वायत्त शासन के चंगुल में फँसने वाली नहीं है, तब उसने स्वायत्त-शासन विधान आयर्लैण्ड को दे दिया। इस शासन विधान के अनुसार आयर्लैण्ड—

फ्री स्टेट कहलाने लगा

उत्तर आयर्लैण्ड और अलस्टर प्रान्त स्वतन्त्र प्रदेश स्वीकार किया गया। लेकिन डी वेलेरा और स्वर्गीय मैक्स-विनी की पत्नी तथा अन्य आयरिश लीडरों ने इस लँगड़े शासन को स्वीकार नहीं किया। इन्होंने अपनी एक रिपब्लि-कन पार्टी बनाई है, जो पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करने में लगी हुई है।



युगोस्लाविया की राज्यक्रान्ति

यूगोस्लाविया, माँटनिग्रो, क्रोट और स्लाव इन छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर यूगोस्लाविया नाम की रचना होती है। क्रोट और स्लाव का इतिहास विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि माँटनिग्रो और सर्विया का इतिहास गौरवमय है। सन् १३८९ ई० से सर्विया तुर्की राज्य के आधीन था। समय ज्यों-ज्यों बदलता गया, त्यों-त्यों लोग गुलामी के शिकंजे से छूटने के लिये लालायित होने लगे। सन् १८७८ में सर्विया वाले तुर्कों की गुलामी से मुक्त हो गए। तुर्कों के जाल से अपने देश को मुक्त करने वाले का नाम था कारा जार्ज। कारा जार्ज स्वतन्त्रता का महान् उपासक था। वे हँसते-हँसते अपनी जान देने के लिये सदा तैयार रहते थे। उन्हें पराधी-नता से महान् घृणा थी। कारा जार्ज का बचपन स्वतन्त्रमय था। उसने ऐसे स्वतंत्र-साहित्य का अध्ययन किया था, जिससे आजादी की आग उसके बचपनमें ही उसे लग गई थी।

अपने देश को आजाद करना उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। आज़ादी की आकांक्षा उस के जीवन में देश में बड़ी प्रबलता से धधक रही थी। समय की लहर ने आज़ादी का एक तूफान सा खड़ा कर दिया था। अनेकों नर-नारियाँ, कारा जार्ज के झण्डे के नीचे आकर जमा होने लगे। तुर्कों के विरुद्ध एक भयंकर विद्रोह की तैयारी होने लगी। कारा जार्ज ही विद्रोहियों के नेता बनाये गये।

कारा जार्ज रणकुशल और राजनीति के एक असाधारण व्यक्ति थे। ऐसे स्वदेश-प्रेमी युवक संसार के स्वाधीनता-संग्राम में बहुत कम देखने में आए हैं। ईश्वर ही अपनी अनोखी रचना से ऐसे देश-भक्तों को संसार के रंगमच पर अपनी अद्भुत-शक्ति के साथ भेजता है। जहाँ-जहाँ भी क्रांतियों की महान् लहरें उठी हैं, वहीं इन महान् शक्तियों का प्रदर्शन हुआ है। अतएव कारा जार्ज के नेतृत्व में सर्वियन विद्रोही सेना जी तोड़कर लड़ने लगी। जितनी भी लड़ाइयाँ हुईं, उन सब में विद्रोहियों की भारी विजय हुई। अंत में तुर्कियों के साथ बड़ी भारी सेना से विद्रोहियों का सामना करना पड़ा। इस भयंकर युद्ध में भी, विद्रोही जी खोलकर लड़े।

इस विलक्षण पराजय से तुर्कियों की शक्ति नष्ट हो गई, और तुर्कियों ने सर्वियनों को शान्त करने के लिये स्वायत्त शासन देने का वादा किया। कारा जार्ज को सर्विया का गवर्नर बना देने की भी घोषणा की गई, किन्तु कारा जार्ज ने इसे निराधार प्रलोभन ही समझा। कारा जार्ज ने स्पष्ट शब्दों में साफ़ जाहिर कर दिया कि हम ऐसे शासन को नहीं चाहते। तुर्कियों ने ऐसा शासन-विधान तैयार किया था, जिसमें तुर्की के अन्तर्गत रहकर सर्वियन अपना राजकाज

चलावें। इस शासन का कारा जार्ज ने तीव्र विरोध कर पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पेश की। साथ ही यह भी घोषणा कर दी कि हमारे देश में और देश के शासन विधान में एक भी तुर्की का हाथ नहीं रहेगा। और जब तक हमारी यह माँग पूरी नहीं होती, हम अंत तक लड़ते रहेंगे"। कारा जार्ज के इस दृढ़ता के साथ उत्तर देने पर तुर्की लोग फिर जिद्द पकड़ गए। उन्होंने शीघ्र ही अपनी सेना का संगठन कर एक बड़ी भारी सेना के साथ विद्रोहियों का मुकाबला किया। इस भारी संगठित सेना के समक्ष सर्बियन निरुपाय हो गए अपना कड़ा से कड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया। एक विद्रोही नेता को अपने जाल में फँसाकर उसे वहाँ का गवर्नर बना दिया।

गवर्नर का नाम था—"मिलोश"—मिलोश भी बड़ा चालाक आदमी था। एक वर्ष तक शासन करने के बाद उसने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इस बार भी भयंकर लड़ाईयों में विद्रोहियों की जीत पर जीत हुई और सन् १६१६ ई० में सर्बिया बिलकुल स्वाधीन प्रदेश बन गया। इस स्वाधीनता की लड़ाई को कारा जार्ज दूर ही से देख रहे थे। वे तुर्की साम्राज्यन्तर्गत-स्वराज्य के विरोधी थे। उनकी धारणा थी कि मिलोश एक बार फिर सिर उठाएगा। लेकिन यह धारणा उनकी निर्मूल साबित हुई। मिलोश ने यही स्वराज्य पसन्द कर लिया। कारा जार्ज ने एक वर्ष तक यह प्रतीक्षा की, कि मिलोश फिर पूर्ण स्वाधीनता के लिये लड़ेगा। जब उन्होंने देखा कि "मिलोश" अब सर नहीं उठाएगा, तब वे फिर गुप्त रूप से सर्बिया में आ गये। उनकी इच्छा थी, कि एक बार फिर सर्बियन जनता को विद्रोह करने के लिये उभाड़ें।

परन्तु देश द्रोहियों की सर्बिया में कमी नहीं थी, उन्होंने

शीघ्र ही तुर्कियों को इस बात की खबर भेज दी कि कारा जार्ज सर्बिया में आ गया है। तुर्कियों ने "मिलौश" को कारा जार्ज को पकड़ने के लिये चेतावनी दी। मिलौश ने कारा जार्ज को पकड़ लिया और उसे मिलौश के पक्षवालों ने मार डाला।

कारा जार्ज को इस षड़यंत्र की बिलकुल खबर नहीं थी। अगर उन्हें इस बात का पता मिल जाता तो वे कभी के भाग निकलते। इस तरह इस वीर-उपासक का अन्त कर दिया गया।

स्वाधीन सर्बिया और वीर मिलन

कारा जार्ज के मरने से उसका आन्दोलन ठण्ढा नहीं हुआ। उसकी अमर आत्मा ने ऐसा जोरदार आन्दोलन चलाया कि तुर्कियों के पैर सर्बिया से उखड़ गए। सन् १८६६ ई० में मिलन नाम के एक प्रभावशाली व्यक्ति मैदान में आए और उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये फिर से आन्दोलन आरम्भ कर दिया। मिलन के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया। मिलन के पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में तुर्कियों की विजय हुई। तुर्कियों ने मिलन से सन्धि कर ली। किन्तु एक वर्ष बाद फिर मिलन ने विद्रोह की आग भड़का दी। इस विद्रोह में मिलन पूर्ण तेजी के साथ आगे बढ़ा। उसने तुर्कियों से अनेकों स्थान छीन लिये। तुर्कियों को इस विद्रोह का दमन करना कठिन हो गया। अन्त में मिलन की शक्ति के आगे तुर्की झुक गए और सर्बिया-सर्बियनों को दे दी गयी। मिलन विजयी हुआ।

९५

"मॉन्ट नीग्रो"

संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं; जो पराधीन देश में न रहकर, जंगलों और पहाड़ों में अपना स्वाधीन जीवन व्यतीत करते हैं। राणा-प्रताप और शिवाजी इसी सिद्धान्त के मानने वाले थे। स्वतन्त्रता प्रेमी राणा-प्रताप ने जंगलों की फूल-पत्तियों को खाकर अपना जीवन देश के बाहर ही व्यतीत किया। अतएव तुर्की के अत्याचारों से ऊबकर सर्वियनों ने जंगलों में रहना पसन्द किया। उन्होंने वहाँ एक छोटी सी बस्ती बसाकर मॉन्ट नीग्रो नामक स्वाधीन राज्य स्थापित किया।—इस छोटे से राज्य पर भी तुर्की लोगों ने भयंकर आक्रमण किए। लेकिन स्वतन्त्र जलवायु में रहने वाले इन थोड़े से वीरों ने तुर्कियों के छक्के छुड़ा दिए। कई बार विशाल सेनाओं को पराजित होकर लौटना पड़ा। संसार के सभी स्वाधीन राष्ट्रों में मॉन्ट नीग्रो सबसे छोटा राज्य है, जिसकी जन संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। इस छोटी सी बस्ती पर आज तक फिर किसी शक्ति ने आक्रमण नहीं किया और सदा से यह अपनी रक्षा करती आ रही है।

मॉन्ट नीग्रो का प्रत्येक निवासी फौज का सिपाही है; एक बार जब तुर्कों की सेना ने भयंकर आक्रमण किया, तब वहाँ के निवासियों ने अपने-अपने गाँवों में आग लगा दी और जंगलों में जा छिपे। शहर को भस्मीभूत देखकर तुर्की सेना को एक बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ी। उनको रसद पानी मिलना असम्भव हो गया। इस तरह बड़ी भारी हानि उठा-कर तुर्की सेना लौट गई। सेना के लौट जाने पर थोड़े ही

दिनों में वहाँ के निवासियों ने अपने देश को फिर आबाद कर लिया।

अहोवा-युद्ध

आज के सौ बरस पहले तुर्क लोग बड़े ही रण-कुशल समझे जाते थे लेकिन अहोवा के युद्ध में करीबन हज़ारों तुर्कियों को केवल सौ माँन्ट नीग्रो निवासियों ने हरा दिया। यह युद्ध सन् १८५२ ई० में हुआ था। इस पराजय से दक्षिण यूरोप में यूनानियों का सिर लज्जा से झुक गया था।— इसके बाद यूगोस्लाविया स्वाधीन हुआ—

जेकोस्लोवाकिया की राज्यक्रान्ति

यूरोप के महासमर के बाद संसार के राजनैतिक क्षेत्र में विशाल-परिवर्तन हो गया! छोटे-छोटे राष्ट्र जो आज तक बड़े राष्ट्रों के गुलाम समझे जाते थे; बड़ी-बड़ी शक्तियाँ उनको हड़प जाती थीं। इस महायुद्ध ने उन्हें अपना संगठन करने का अपूर्व अवसर दिया। छोटे-छोटे राष्ट्रों ने दासत्व को उखाड़ फेंका और आपस में अपना संठन कर स्वतन्त्र-प्रजातन्त्र स्थापित किया। जेकोस्लोवाकिया भी इन छोटे-छोटे राष्ट्रों में से एक था। इस विशाल महायुद्ध ने यूरोप की बड़ी-बड़ी

शक्तियों को छिन्न-भिन्न कर दिया। जर्मनी-आस्ट्रिया आदि की समस्त शक्तियाँ चूर-चूर हो गईं। उस समय जेक और स्लोवाक जो क्रमशः आस्ट्रिया और हँगरी के आधीन थे, स्वतन्त्र होगये। रूथेन तथा जर्मन लोगोंने भी अपना २ अलग प्रजातन्त्र बना लिया। जेक पहिले सन् १५२६ ई० में एक स्वतन्त्र राष्ट्र था और बोहीमिया के नाम से प्रसिद्ध था। सन् १५२६ ई० में मोक्स के भयङ्कर युद्ध में आस्ट्रिया के साम्राज्य में यह जोड़ दिया गया। उस समय से आस्ट्रिया के साम्राट ही उसपर शासन करते थे। परन्तु जेक जाति परतन्त्र नहीं रहना चाहती थी। उसे स्वतंत्र होने की प्रबल आकांक्षा थी। महायुद्ध से उन्हें बहुत उत्तेजना मिली। इसी समय उन्हें एक ऐसा नेता मिल गया जिसकी योग्यता, दृढ़ता और स्वार्थ त्याग से जनता उसपर जान देने लगी। यह महापुरुष डाक्टर मशरिक था। डाक्टर मशरिक का जन्म सन् १८५० में मोरेविया के एक शहर होहोनीम में हुआ था। उसके पिता एक सरकारी रियासत में रिजेंट थे। मशरिक एक बग्गी बनाने वाले मिस्त्री के यहाँ नौकर था। उसे एक पादरी की कृपा से वीना और लिपजीग के विश्वविद्यालय में शिक्षा-प्राप्त करने का अवसर मिल गया। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। उनका विद्याध्ययन भी बहुत तेज था। तत्त्वज्ञान आदि विषयों का खूब अध्ययन किया। उन्होंने एक पुस्तक लिखी जो कि यूरोप भर में प्रसिद्ध है :—इस पुस्तक का नाम है :—

A study on sucide as a pathological symptom of the condition of contemporary Europe. इस पुस्तक में यूरोप के अधःपतन के कारण समझाये गये हैं। सन् १८८२ ई० में डा० मशरिक प्रेग की यूनिवर्सिटी में तत्त्वज्ञान

के प्रोफेसर हो गये। धीरे-धीरे उनका प्रभाव सभी जातियों में बढ़ने लगा। जेकोस्लोवाकिया की समस्त जातियों को एक सूत्र में बाँध देना डा० मशरिक के ही अतुल परिश्रम का फल था।

महायुद्ध का बिगुल बजते ही, डाक्टर मशरिक ने अपने देश को स्वतन्त्र करने का विचार किया। वह १९१४ के दिसम्बर मास में प्रेग से चल पड़ा और इटली पहुँच गया। इटली होता हुआ मशरिक पेरिस पहुँचा; जहाँ इसे मित्रराष्ट्रों से कुछ सहायता मिलने की बहुत आशा थी। यहाँ पर डा० बीन्स और कर्नल स्टीफेनिक के सहयोग से—जेकोस्लोवाक राष्ट्रीय-शासन सभा स्थापित की। इस आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि जेक लोग आस्ट्रियन मोरचे पर से हटकर मित्र-शक्तियों से आकर मिलने लगे। इस तरह सन् १९१५ ई० के अन्त तक ७५००० से लेकर एक लाख तक जेक इकट्ठे हो गए। ये प्रजातन्त्र के आशावादी मित्र-राष्ट्रों की ओर से आस्ट्रिया से लड़ने को तैयार हुए। इन लोगों को फ्रांस, इटालियन और रशियन पोशाकें पहिनाकर युद्धक्षेत्रों में भेज दिया गया। लोग अपने उद्धार के लिये प्राणों की बाजी लगा रहे थे। एक तरह से ये युद्ध में अपनी जान तो लड़ाते ही थे, परन्तु अगर दुश्मनों के हाथ कैद हो जाते थे तो तोप से उड़ा दिये जाते थे।

डा० मशरिक ने अपना जाल विस्तृत रूप से फैलाया, रूसी सैनिकों से एक समझौता किया कि वे जेक-सिपाहियों पर गोली न चलावें और ज्योंही वे आत्म-समर्पण का चिन्ह दिखलावें, तुरन्त ही अपनी शरणागत में आ जाने दें।" मित्र-शक्तियाँ डा० मशरिक से पूर्ण सहानुभूति रखती थीं,

क्योंकि वे अपने प्रान्त के लिये जी जान से लड़ रहे थे। दूसरे वे आस्ट्रिया-हँगरी का बल तोड़ने के लिये घोर प्रयत्न कर रहे थे। फ्रांस से डा० मशरिक लंदन पहुँचे। लंदन ही इनका हेडक्वार्टर हो गया। १६१५ से लेकर रूसी राज्यक्रांति तक ये लंदन ही में जमे रहे। यहाँ भी एक जेक राष्ट्रीय-परिषद बनाई गई। परन्तु मुख्य केन्द्र पेरिस ही था। आन्दोलन की गति-प्रगति की देख-रेख यहीं से होती थी। डाक्टर बीन्स मशरिक का दाहिना हाथ था; बीन्स ने जेक संगठन में काफी सहायता दी थी। अमेरिका के आठ लाख जेक भी इस संगठन में शामिल थे। इस तरह आर्थिक दृष्टि से जेक आंदोलन फंड में रुपये पैसे की कमी नहीं थी। किन्तु, आंदोलन के और साधन उपस्थित न थे।

डा० मशरिक ने सन् १६१६ ई० में "न्यू यूरोप" नाम का एक पत्र निकाला, जिसने अपने पक्ष का समस्त यूरोप में खूब प्रचार किया। इस पत्र के प्रभाव से जेक समस्या को लोग भली-भाँति समझने लगे और बहुमत डा० मशरिक के सिद्धांतों की ओर झुक गया। पेरिस स्थापित जेक राष्ट्रीय परिषद् का मशरिक सभापति और डा० बीन्स मन्त्री था। फ्रांस सरकार ने जेक सरकार का अधिकार मान लिया किन्तु लन्दन सरकार इस अधिकार को मानने के लिये तैयार न हुई। किन्तु गरमागरम बहस के बाद लन्दन सरकार ने भी मान लिया। सन् १६१८ में डा० मशरिक न्यूयार्क पहुँचे। इस समय समस्त देशों की गुत्थियाँ सुलझाने का भार विशेषतः अमेरिका पर ही निर्भर था। वह एक राजनैतिक केन्द्र बना हुआ था। जेक अमेरिकन नागरिकों ने सन् १६१८ में एक "बोहीमियन नेशनल एलायन्स" नाम की संस्था कायम

की। जब मशरिक अमेरिका में आये तो, वहाँ के जेकों ने एक घोषणा-पत्र प्रेसिडेण्ट विल्सन के पास भेजा, जिसमें जेक राज्य की स्थापना का ध्येय था। इसके बाद डा० मशरिक प्रेसि० विल्सन से मिले। फ्रांस और इंग्लैण्ड से उन्हें जो सहायता मिली थी, उसका अर्थ यही था कि जेक में प्रजातन्त्र हो जाने से ही जर्मनी की आकाँक्षाओं पर पानी फेरा जा सकता है। साथही एशियाई-समस्याओं को भी उसने सामने रखते हुए कहा कि जर्मनी—बगदाद रेलवे लाईन को भी न बढ़ने देना, जेक समस्या पर ही निर्भर है। डा० मशरिक ने इस बात पर जोर दिया कि स्वतन्त्र जेक ही जर्मनी और आस्ट्रिया की बढ़ती हुई शक्तियों को रोकने में समर्थ हो सकेगा। प्रेसिडेंट विल्सन पर इस तर्कका अधिक प्रभाव पड़ा। ३ सितम्बर को सेक्रेटरी आफ स्टेट ने संयुक्तराज्य अमेरिका की तरफ से जेकोस्लोवाकिया राष्ट्र को एक स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया। इटली और जापानने भी जेकोस्लावाक राष्ट्र को स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया। इस समय जेक-सरकार की बड़ी गंभीर स्थिति थी। बेलिजियम की तरह जर्मनी का पूरा अधिकार इनके देश पर था। जेकों के लिए एक जमीन का टुकड़ा भी बाकी न था। डा० मशरिक कुछ दिनों तक अमेरिका में रहकर अपने देश के लिये बहुत कुछ प्रचार करता रहा। जेक राष्ट्रीय-परिषद् की एक शाखा वाशिंगटन में भी स्थापित हो गई। १८ अक्टूबर को पेरिस से एक घोषणा-पत्र निकाला गया, जिसमें जेकोस्लावाक एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, उस पर किसी अन्य देश को राज्य करने का अधिकार नहीं है, यह बतलाया गया। इसके बाद जिनेवा में जेक-वासि की एक राष्ट्रीय परिषद् हुई, और डा० मशरिक उसके सभापति चुने

गए। १२ नवम्बर को डा० मशरिक जेक-प्रजातन्त्र के प्रसिडेन्ट चुने गये, और उन्हें शीघ्र ही प्रेग जाने का आदेश मिला। २१ नवम्बर सन् १९१८ को डा० मशरिक यूरोप जाने के लिये रवाना हुए, और ३० नवम्बर को लन्दन पहुँच गए, जहाँ उनका सरकारी तौर पर स्वागत किया गया।

७ सितम्बर को पेरिस पहुँचकर वे प्रेग को रवाना हो गए, तारीख २० को वे प्रेग पहुँचे। जेक जनता ने उनका जोरों से स्वागत किया। वार्सेलीज की सन्धि में जेकोस्लोवाकिया पूरा स्वतन्त्र राष्ट्र माना गया। कुछ समय बाद डा० मशरिक के असीम परिश्रम से जेकोस्लोवाकिया एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।—

जेकोस्लोवाकिया में कई जातियाँ है। जेकों की संख्या ६५.५ प्रतिशत, जर्मनों की २३.५, हंगेरियनों की ५.४, रुथेनियनों की ३.३ और पोल लोगों की ०.५ प्रतिशत है। इस समय याने १९३८ में जेकोस्लोवाकिया का सूडेटनप्रांत जिसमें जर्मनों की संख्या अधिक थी, जर्मनी ने जेक सरकार से छीन लिया, और उसकी समस्त सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा लिया। इस छीना झपटी से जेक लोगों का सबसे बड़ा शक्तिशाली और धनवान हिस्सा जर्मनी के पास पहुँच गया। जेक सरकार ने अपना एक बड़ा प्रदेश जर्मन सरकार को बिना किसी हिचकिचाहट से देकर भविष्य में होने वाले एक महान् युद्ध को टाल दिया। इसमें इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मि० चेम्बरलेन का हाथ था, जिन्होंने शांति स्थापना की ओट में एक निर्बल राष्ट्रको तोड़ने में बहुत अधिक भाग लेकर शांति का मुकुट अपने मस्तक पर बांधा। लेकिन इस कुटिल नीति को संसार ने घृणा की दृष्टि से देखा।



स्पेन की राज्यक्रान्ति

स्पेन का प्रजातन्त्र

चूँकि स्पेन अब भी भीषण गृह-युद्ध में फँसा हुआ है, इसका क्या भविष्य होगा, यह ठीक तौर से अब भी नहीं कहा जा सकता। इन नवीन क्रान्तियों का भविष्य में क्या इतिहास होगा, यह अभी लिखना ज़रा असम्भव बात है। स्पेन में प्रजातन्त्रीय शासन है। सन् ३० के पहिले स्पेन में स्वेच्छाचारी शासन था। पूरे आठ वर्ष तक घोर आन्दोलन करने के बाद १४ वीं अप्रैल सन् १९३१ को स्पेन में प्रजातन्त्र की घोषणा हुई। १४ वीं अप्रैल को स्पेन के सम्राट एल्फ़ेंज़ो को सकुटुम्ब अपना देश छोड़कर भागना पड़ा। स्पेन के इतिहास में यह एक आश्चर्य-जनक घटना थी, कि ४४ वर्षों के महान् शासक को बात की बात में स्पेनिश जनता ने खदेड़ भगाया। यूरोप के एक प्राचीन राजवंश का इस तरह खात्मा हो जाना कोई साधारण बात नहीं थी। विगत २० वर्ष के भीतर कितने ही स्वेच्छाचारी राजाओं के राजमुकुट समय के परिवर्तन ने छीन लिए। जिनके महलों में सदा घी के चिराग जलते थे, आज वे संसार के अन्धकारपूर्ण कोनों में पड़े हैं।

जनरल प्राइमो और डि०रिविरा—ने सन् १९२३ ई० में स्पेन की पार्लियामेन्ट को तोड़कर सैनिक-शासन स्थापित किया था। इस सैनिक शासन से प्रजा में अत्यन्त असन्तोष

बढ़ा। यूरोपीय महा-समर के बाद जब चारों ओर प्रजातन्त्र की ज्वालाएँ धधक उठी थीं, ऐसे समय में स्पेन सैनिक सत्ता कब स्वीकार कर सकता था। चारो तरफ विद्रोह की प्रबल ज्वालाएँ उठने लगीं। स्पेनिश सरकार ने घोर दमन आरम्भ किया। समाचार पत्रों पर कड़ा नियन्त्रण लगा दिया। स्वतन्त्र-साहित्य जब्त किये जाने लगे। जनता की उठती हुई जबान बन्द कर दी गई। यहाँ तक कि सैकड़ों संस्थाएँ बन्द कर दी गईं, और अनेकों नवयुवकों को फाँसी के तख्ते पर टाँग दिया गया। ज्यों-ज्यों-सरकार दमन करती थी, त्यों-त्यों आजादी के दीवाने सैनिक एक कदम और आगे बढ़ते थे। अन्त में सरकार दमन से हार गई। उसने मौनव्रत धारण कर लिया। जब जब जनता ने असन्तोष का प्रदर्शन, तथा हड़तालें कीं—तभी सम्राट का एक मात्र उत्तर यही था कि हजारों हड़तालें होने पर भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ सकता, सैनिक हमारी मुट्ठी में हैं और फौज के जनरलों पर हमारा विश्वास है। सम्राट को शस्त्र-नीति में विश्वास था। वह समझता था, कि हमारी इस अमोघ-शक्ति के आगे सभी शक्तियाँ बेकार हैं। उसे यह स्वप्न-मात्र में भी पता नहीं था, कि जनता की संगठित पुकार और उसकी प्रबल आहों के नारे इस नृशंस और निरंकुश शक्ति का ढांचा चूर-चूर कर देगी।

सन् १९३० का विद्रोह

१९३० ई० के १२ और १३ दिसम्बर को जका नामक दुर्ग के सैनिकों ने भीषण विद्रोह का झंडा खड़ा किया। सारे फौजी

अफसर कैद कर लिये गए। इस विद्रोह को दबाने के लिये राजभक्त सेना भेजी गई। बागी सिपाही गिरफ्तार कर लिये गए। इस विद्रोह के नेता गर्शिया-हरवाडूज और कैप्टेन गलन को गोली से उड़ा दिया गया। इसके पूर्व नवम्बर मास में भी हड़तालें और छोटे-छोटे बलवे हो चुके थे। मेड्रिड और बारसलोना नामक शहर में बड़े ही भयंकर दंगे हो गए? यद्यपि ये दंगे और हड़तालें सिर्फ स्वतन्त्र-शासन के मांग के लिये थीं, परन्तु सरकार की ओर से इन दंगों का कारण एक साधारण उत्पात ही बतलाया गया। जनता सरकारी वक्तव्य देखकर और भी चकित हो गई। सरकार ने इतनी कुर्बानियों को एक साधारण उत्पात बताकर संसार को अपनी सफाई दे दी।

सन् १९३१ का दमन

सन् १९३१ जनवरी को सरकार ने फिर घोर दमन आरम्भ किया। प्रेसों का गला घोंट दिया गया। सभाबन्दी कानून जारी कर दिये गए। देश भर में सैनिक शासन की व्यवस्था कर दी गई। स्वतन्त्रता के दीवानों को जेलों में ठूँस दिया गया, जिनकी संख्या प्रायः १०, ०० हजार थी। फाँसी पर टँगने वालों की संख्या ज्ञात नहीं कितनी थी। इतना भीषण दमन होने पर भी सरकार आन्दोलन को शान्त नहीं कर सकी। देश के एक महान् नेता जनरल-फ्रांको ने आकाश मार्ग से हवाई जहाज में क्रान्ति के परचे बरसाए और शीघ्र ही पुर्तगाल को चल दिए।

जनरल फ्रांको ने कहा था—"हम राजनैतिक और सैनिक विद्रोह के द्वारा न्याय-सम्मान और गौरव की स्थापना

करना चाहते हैं, जो कि प्रजातन्त्र शासन प्रणाली में ही संभव है।"—इसी समय प्रधान सचिव जनरल बयरंग यर ने एक घोषणा प्रकाशित की। जिसमें बतलाया गया था कि सरकार जनता को समस्त अधिकार दे देना चाहती है, और जब वह योग्य अवसर देखेगी, तब शासन के सभी अधिकार जनता को दे दिए जावेंगे। लेकिन जनता को इस घोषणा पर विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि कई बार स्पेन-सरकार ने ऐसी घोषणाएँ प्रकाशित कर जनता के रुख को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न किया था। जनता ने बड़े साहस के साथ उपरोक्त घोषणा को ठुकरा दिया और अपने आन्दोलन की रफ्तार और दूनी कर दी।

आठ वर्षों के घोर दमन करने पर भी जनता के अपूर्व उत्साह में रत्ती-मात्र का भी फर्क नहीं आया। सरकार ने भी जनता को हाथ से बाहर समझ कर अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया। २४ जनवरी सन् १९३१ को सैनिक शासन हटा लिया गया। प्रेसों और सभाओं पर लगे हुए आर्डिनेन्स हटा लिये गए। सम्राट बड़ी लगन के साथ कार्य करने लगा। उसने राजभक्तों का एक नवीन राजनैतिक दल तैयार किया। प्रधान राज-सचिव ने घोषणा की; कि पहली और पन्द्रहवीं मार्च को सिनेटरों का चुनाव होकर २५ वीं मार्च को पार्लियामेन्ट की बैठक होगी। उपरोक्त घोषणा भविष्य के लिये शुभ थी, लेकिन जनता ने इस घोषणा का आदर नहीं किया। वह सम्राट के रोमांचकारी और नृशंस अत्याचारों का बदला लेना चाहती थी। यह घोषणा भी ठुकरा दी गई। हड़तालों और बलवों का क्रम पहिले की तरह ही जारी रहा। जनता अच्छी तरह जानती थी कि पार्लियामेन्ट की स्थापना

केवल एक नाम-मात्र ही है, उसे यह भी पता चल गया था कि उक्त पार्लियामेन्ट में अधिक राजभक्त चुने जावेंगे, जिनसे लाभ की आशा तिलमात्र भी नहीं।

सरकार ने जब इस तरह अपना अपमान होते देखा तो उसने फिर कड़ेसे कड़ा रुख अख्तयार किया। पार्लियामेन्ट का चुनाव स्थगित कर दिया गया। पुराने आर्डिनेन्स फिर से जारी कर दिये गए। सम्राट ने राजभक्तों का जो दल तैयार किया था उसने उसे आगे बढ़ाया। दूसरे मास में पार्लियामेंट के चुनाव की धूम-धाम से तैयारियाँ होने लगीं। इसी बीचमें सम्राट को यह भलीभाँति पता चल गया कि प्रजातन्त्रवादी मुझे शीघ्र ही सिंहासन से उतारना चाहते हैं। १३ वीं अप्रैल को यह अफवाह बहुत ही गरम हो गई। गोडलजर का प्रान्त जो महान् राजभक्त प्रदेश था, एकाएक क्रान्तिवादी बन गया। बहुत से राजभक्त व्यक्ति क्रान्तिकारियों से मिल गए। इससे प्रजातन्त्रवादियों को एक महान् ताकत मिल गई। उस ताकत को देखकर सम्राट और प्रधान सचिव के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। राजभक्त के लोगों के छक्के छूट गये। प्रजातन्त्रवादियों ने अब नवीन शक्ति को लेकर आन्दोलन और भी आगे बढ़ाया। आन्दोलन की प्रबल प्रगति देखकर सम्राट को सिंहासन छोड़ देना पड़ा।

१४ वीं अप्रैल को मेड्रिड में यह समाचार फैला कि सम्राट ने स्वयं त्यागपत्र दे दिया है। इस खबर के उड़ते ही स्पेन खुशी की लहरों में उमड़ पड़ा। पुलिस और फौज भी प्रजातन्त्रवादियों का अभिनन्दन करती हुई उनसे मिल गई। यह समाचार सारे देश में बात की बात में फैल गया। तमाम राजकर्मचारियों ने अपने घरों पर लाल झंडे लगा दिये।

मोटरों पर तथा बाजारों में झंडे ही झंडे दिखाई देने लगे। बादशाह को अब भी आशा थी कि उसका सिंहासन उसके पुत्रको मिल जावे, लेकिन प्रजातंत्रवादियों ने उसकी इस इच्छा को भी ठुकरा दिया। १४ वीं अप्रैल की रात को सम्राट ने सहकुटुम्ब अपना राजप्रसाद आँसू बहाते हुए छोड़ दिया। वे अपने तीन पुराने नौकरों सहित एक अनिश्चित स्थान के लिये विदा हो गए। १४ वीं अप्रैल को सारे देश में प्रजातन्त्र शासन की घोषणा कर दी गई। सम्राट् के प्रतिनिधि एडमिरल अजनार ने, सेनोर जमोरा को जो प्रजातन्त्रवादियों का नेता था, स्पेन का राज्य भार सौंप दिया।

नये मन्त्रि-मंडल की शीघ्र ही स्थापना की गई और सीनोर-जमोरा उसके प्रधान-सचिव नियुक्त किए गये। इस राज्यक्रान्ति से अमीर लोगों में भगदड़ मच गई। भरी हुई रेलगाड़ियाँ बराबर यहाँ वहाँ दौड़ती रहीं। साथ ही वे लोग स्वदेश लौटने लगे, जिन्हें इस महान् आन्दोलन में निर्वासन का दण्ड मिला था। १९ वीं अप्रैल को समस्त यूरोप ने स्पेन के प्रजातन्त्र शासन को स्वीकार कर लिया।

स्पेन का भावी और पूर्ण इतिहास तब तक नहीं लिखा जा सकता, जब तक कि उसका वर्तमान गृह-युद्ध समाप्त नहीं हो जाता। गृह-युद्ध से स्पेन का इतिहास आगे किस साँचे में ढलेगा यह लिखना असम्भव है। स्पेन के वर्तमान गृह युद्ध को संसार की दो बलवान शक्तियाँ चला रही हैं, जो स्पेन के प्रजातन्त्र शासन को नष्टकर फासिस्टवाद की स्थापना करना चाहती हैं। बहुत से राजनीतिज्ञों का यह आम ख्याल है कि स्पेन को ये महान् शक्तियाँ टुकड़े-टुकड़े कर आपस में निगल जाना चाहती हैं। जनरल फ्रांको जो

इस समय विद्रोहियों का अगुआ है, अपने पड़ोसी राष्ट्रों की मदद पर लड़ रहा है। इसमें इटली भी उसे भरपूर सहायता दे रहा है। जनरल फ्रांको की विजय से संसार के राष्ट्र स्पेन पर टूट पड़ेगें और उसके टुकड़े-टुकड़े कर आपस में बाँट लेंगे।



इङ्गलैण्ड की राज्यक्रान्ति

स्टुअर्ट राजवंश

ट्यूडर-राजवंश एक पुराना राजवंश था। इस राजवंश का खातमा सन् १६०३ ईस्वी में हुआ और इसी समय स्टुअर्ट राजवंश शुरू हुआ। इस समय फांस और जर्मनी में धार्मिक क्रान्तियों की लहर जोर पकड़ रही थी। दूसरी तरफ यूनानी प्रजातन्त्रवाद की हवा से सभी देशों के लोग भयभीत थे। इङ्गलैंड की जनता में, प्रजातन्त्रवाद के भाव जाग्रत हो चले थे।

स्टुअर्ट राजवंशीय अपने पुराने नियमों की तरह राजा को एक ईश्वरीय शक्ति समझते थे। उनका विश्वास था, कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। उसकी इच्छा ही ईश्वरीय कानून है, उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करना एक तरह से ईश्वर को न मानना है। राज-पक्षवालों की भी यही धारणा

थी, कि राजा ईश्वर का प्रतिनिनि है। वह जो चाहे कर सकता है। इधर जनता में जो भाव जाग्रत हुए, उन भावों का यह तर्क था, कि राजा प्रधान-शक्ति नहीं, (Law) कानून प्रधान है। "राजा को कानून ही बनाता है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं, किन्तु जनता प्रतिनिधि है", ये प्रजा के जाग्रत भाव थे। लेकिन ये सिद्धान्त मात्र थे। ब्रिटेन की राज्यक्रान्ति के प्रधान तीन कारण थे—राजनीतिक-धार्मिक और आर्थिक। स्टुअर्ट राजवंशी यह चाहते थे कि तीनों बातों के ऊपर हमारा विशेष अधिकार रहे। तात्पर्य यह कि अपनी सत्ता के सिवाय, किसी दूसरी सत्ता को वे नहीं चाहते थे और क्रान्ति का यही एक प्रधान कारण था। जनता इसके बिलकुल विपरीत थी। उसमें जो नवीन भावों की उत्तेजना हुई थी, वह उत्तेजना थी,. निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकना।

जेम्स-प्रथम

इस समय जेम्स प्रथन इंगलैंड का बादशाह था। सन् १६०४ ई० में पार्लियामेंट की पहली बैठक हुई। जेम्स ने गाडविन नामक एक व्यक्ति को पार्लियामेंट में बैठने की मनाही कर दी थी। "हाउस आफ कामन्स" ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि "पार्लियामेंट में उठने-बैठने का निपटारा पार्लियामेंट ही कर सक्ती है, राजा को इसमें दखल देने का कोई भी अधिकार नहीं।" राजा ने इस वक्तव्य का यह उत्तर दिया, कि पार्लियामेंट को हुक्म देनेवाला राजा ही है। अन्त में बहुत बहस के बाद पार्लियामेंट की सत्ता स्वीकार की गई, और जेम्स को हार माननी पड़ी। जेम्स ने अपनी आमदनी

बढ़ाने के लिए एक और नया टैक्स लगाया। पहली पार्लियामेंट सन् १६११ में तोड़ दी गई। सन् १६१४ ई० में दूसरी पार्लियामेंट बनाई गई और दो महीने में ही उसकी जिन्दगी का खात्मा कर दिया गया। तीसरी पार्लियामेंट सन् १६२५ में बुलवाई गई, जिसमें कुछ प्रभावशाली व्यक्ति आ गए। इस नवीन सदस्यों ने राजा के कई विश्वासनिय मन्त्रियों के ऊपर अविश्वास के प्रस्ताव पास कर हटवा दिये। हाउस आफ कामन्स ने भी पार्लियामेंट का पूरा साथ दिया। जेम्सने स्वतन्त्र-भाषण देने का अधिकार पार्लियामेन्टरी सदस्यों से छीन लिया था। इसपर हाऊस आफ कामन्स ने अपने अधिकार को पुनः प्राप्त कर लिया। इसी समय जेम्स अपने पुत्र की शादी स्पेनिश राजकुमारी से तय कर रहा था, परन्तु सारा हाऊस स्पेनिशों के विरुद्ध था। "हाऊस" ने इस विवाह का जोरदार विरोध किया। इसपर जेम्स बिगड़ उठा, उसने हाऊस-आफ-कामन्स को कड़ी फटकार देकर एक चेतावनी दी, कि हाऊस के सदस्य इस विषय में कभी भी हस्तक्षेप न करें। १५ दिसम्बर सन् १६२१ को "हाऊस" में फिर एक सभा की गई और उक्त स्वतन्त्र भाषण देने की माँग पेश की गई। इस माँग को जेम्स ने ठुकरा दिया, और जिस कागज पर प्रस्ताव लिखकर भेजा गया था, उसे फाड़कर फेंक दिया। अभी यह झगड़ा चल ही रहा था कि सन् १६२५ ई० में जेम्स की मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम राज्यासीन हुआ।

चार्ल्स-प्रथम

चार्ल्स प्रथम बहुत ही संकीर्ण विचारों का व्यक्ति था,

वह अपने को ईश्वर का एक अङ्ग समझता था। उसे इस विचार के प्रतिकूल जहाँ भी कुछ सुनाई पड़ता था, वहाँ वह उसे राजद्रोह करार देता था। ग्यारह वर्षों तक चार्ल्स स्वेच्छाचारी शासक रहा। सन् १६२५ ई० में पार्लिमेन्ट की बैठक हुई। इस समय चार्ल्सने स्पेन पर आक्रमण करने की तैयारी की। इस तैयारी में धन व्यय करने के लिये पर्लियामेन्ट ने इन्कार कर दिया। राजा के व्यक्तिगत खर्च के लिये, जो कर 'टिनेन्सी', और "पाउन्डेज" के रूप में प्रजा हमेशा के लिये दिया करती थी, उसकी अवधि हाउस ने १ वर्ष की कर दी। इसपर जेम्स बहुत चिढ़ गया। पार्लियामेन्ट की तीसरी बैठक सन् १६२६ में हुई। इस समय चार्ल्स बहुत क्रोधित था, इस बार उसने साफ एलान कर दिया कि यदि अब पार्लियामेन्ट मेरे कार्यों में किसी तरह का हस्तक्षेप करेगी तो उससे अच्छी तरह सामना किया जावेगा। इस धमकी से पार्लियामेन्ट बहुत अप्रसन्न हुई। साथ ही साथ चार्ल्स ने जबरन कर्ज लेना आरम्भ कर दिया। जो उसे मुँह-माँगा कर्ज नहीं देता था, उसे वह अपने विशेष अधिकारियों द्वारा जेल भेज देता था। व्यक्तिगत और नागरिक स्वतन्त्रता का अपहरण देखकर अँग्रेज जनता बौखला उठी। तीसरी पार्लियामेन्ट ने बहुत ही जोरदार प्रस्ताव पास किये, जिनमें तीन मुख्य थे।

(१) राजा बिना पार्लियामेन्टरी-आज्ञा के ऋण नहीं ले सक्ता !

(२) राजा बिना किसी खास प्रमाण के, किसी व्यक्ति को कारागार में नहीं भेज सकता।

(३) सरकारी सेना और नाविक-सिपाहियों का

व्यय जो प्रजा को देना पड़ता था, उसके बन्द करने का एक प्रस्ताव था।

चार्ल्स ने पहिले तो उपरोक्त प्रस्तावों को मानने से इन्कार कर दिया, लेकिन पीछे से लाचार होकर मानना पड़ा। उपरोक्त शर्तों को मान लेने पर भी चार्ल्स ने उनपर अमल नहीं किया। अब सन् १६२९ में पार्लियामेन्ट का अधिवेशन हुआ, इस अधिवेशन में खुल्लमखुल्ला राजा की नीति का विरोध किया गया। भीषण परिस्थिति देखकर राजा ने पार्लियामेंट को तोड़ना चाहा। यह बात पार्लियामेंट को किसी तरह मालूम हो गई। उसने शीघ्र ही आधी रात के समय एक बन्द कमरे में अपने प्रस्ताव पास कर डाले। सन् १६२९ से पार्लियामेन्ट तोड़ दी गई और पार्लियामेंट का प्रमुख और प्रभावशाली नेता इलियट टावर में बन्द कर दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। सन् १६०३ से सन् १६२६ तक पार्लियामेन्ट बराबर जनता की माँगों का जोरदार पक्ष लेती रही, और राजा अपने राजदंड से उन माँगों को ठुकराता रहा। परन्तु पार्लियामेन्ट के सदस्य जरा भी निराश नहीं हुए। इलियट के अपूर्व बलिदान से उनमें नया जोश पैदा हो गया। वे काफी उत्साह से कार्य करने लगे। तीसरी पार्लियामेन्ट के टूटने के बाद ग्यारह वर्ष तक कोई भी पार्लियामेन्ट नहीं बनाई गई। चार्ल्स अपनी इच्छानुसार ही कार्य करता रहा। अपने इस शासन काल में उसने मनमाने अत्याचार किये, और प्रजा से काफी धन लूटता रहा। बिना किसी विचार के सैकड़ों आदमियों को जेल भेजा। चार्ल्स के इन अत्याचारों से प्रजा घबरा उठी। यह घबराहट शसस्त्र क्रांति के रूप में बदल गई। प्रजा ने युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटेन

का अधिकांश धनीवर्ग चार्ल्स की मदद पर उतारू होगया। एजहिल–चार्ल्सभूव–अडवल्टन–मूर–और न्यूजबरी में घमासान युद्ध हुआ। सन् १६४४ ई० में क्रामवेल ने चार्ल्स को भयंकर शिकस्त दी, जिससे राजा को आत्म-समर्पण करना पड़ा। इस राजनीतिक क्रान्ति के बाद धार्मिक-क्रान्ति शुरू हो गई। पार्लियामेन्टरी सदस्यों और सेना में धार्मिक मतभेद था। सेना जो विद्रोही हो उठी थी चार्ल्स से समझौता करने को तैयार हुई, लेकिन इस समझौते में यह शर्त थी कि समस्त धर्मावालों के साथ बिना किसी भेदभाव के समानता का व्यवहार किया जावे। लेकिन राजाने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, फलतः थोड़े ही दिनों में 'व्हाइट द्वीप' को भाग निकला। इसी बीच में उसने स्कॉटलैंड वालों को बहुत बड़ी आशाएँ देकर अपनी ओर मिला लिया। अब फिर से पार्लियामेन्टरी सेना के साथ युद्ध छिड़ गया। १६४८ ई० में क्रामवेल ने फिर चार्ल्स को गहरी पराजय दी।

६ दिसम्बर सन् १६४८ ई० के पार्लियामेन्ट भवन पर खड़े होकर कर्नल प्राईड ने १४३ सदस्यों को निकाल बाहर कर दिया। इन सदस्यों पर उसे विश्वास नहीं था। इसके बाद पार्लियामेन्ट के सदस्यों की फिर बैठक हुई, जिसमें चार्ल्स के ऊपर अत्याचारों का भीषण आरोप लगाकर उसे मृत्यु-दण्ड की सजा दी गई।

इतिहास के पन्नों में यह पहली घटना थी कि प्रजा ने अपने देश के राजा को मृत्यु-दण्ड दिया हो। चार्ल्स पकड़ा गया; और उसे ३० जनवरी सन् १६४९ ई० को २ बजे फाँसी की सजा दे दी गई। फाँसी के तख्ते पर जब चार्ल्स

खड़ा हुआ था; वह जरा भी उदास न था। उसके मुख से गम्भीरता और प्रसन्नता टपक रही थी।

आज हम जिस शासन प्रणाली को इङ्गलैण्ड में देखते हैं उसका जन्म इसी राज्यक्रान्ति से हुआ। वैसे तो ब्रिटेन में धार्मिक क्रांतियाँ खूब हुईं। प्रोटेस्टेंट और कैथालिक मतवालों में घमासान युद्ध हुए। हजारों नहीं लाखों व्यक्ति, बच्चे और स्त्रियाँ धार्मिक क्रांतियों में काम आए। मनुष्यों को जीते जी जला देने की प्रथा इन्हीं क्रांतियों से पैदा हुई। हजारों कैथोलिक धर्मवाले जीते जी जलाए गए, फाँसी पर चढ़े, और तलवारोंके घाट उतारे गए। परन्तु यही एक राजनीतिक क्रांति थी, जो ब्रिटेन की राजसत्ता और गौरव को आगे बढ़ाने में सफलीभूत हुई।

इटली की राज्यक्रान्ति

इटली-प्रजातन्त्र

रोम साम्राज्य के नष्ट होने पर इटली की दशा बिगड़ गई। विदेशियों का वह एक तरह का केन्द्र ही हो गया। बाहरी लोग उसे हड़पने की जी-जान से कोशिश करने लगे। ८०० वर्ष तक इटली विदेशियों की लूट-खसोट का एक केन्द्र बना रहा। प्रजा में एकता और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार

न होने से, निरंकुश शासनवादियों द्वारा सारा देश मृतप्राय-सा हो गया। चौदहवीं शताब्दि के आरम्भ में कोलादिरियेंची नामक एक व्यक्ति ने राष्ट्रीय आंदोलन का श्रीगणेश किया। देश की सोती हुई और छिन्न भिन्न जनता के संगठन करने में घोर प्रयत्न किया। भिन्न-भिन्न राजाओं के अत्याचारों से सारे इटलीमें एक तूफानसा मचा था। कोलादिरियेंचो एक बहादुर नवयुवक था। इसने अपनी पहली आवाज राजतन्त्र के विरुद्ध उठाइ। अभी तक इटली के पास स्वदेशाभिमानी एक भी नेता नहीं था। जनता ऐसे नेता को पाकर उसकी अनुयायी हो गई। शासकों ने जब यह देखा कि कोलादिरियेंची के विचारों से जनता विद्रोही भावों से भरा जा रहा है, तब उन्होंने जनता को अपने पक्ष में मिलाकर कोलादिरियेंची के विरुद्ध उभाड़ दिया मूर्ख जनता ने जो शासकों की राजनीति पॉलिस से अनभिज्ञ थी, पागलपने के जोश में आकर अपने देशभक्त नेता की हत्या कर डाली।

अपने देशभक्त नेता की हत्या का रहस्य और अपनी गलती इटली निवासियों को बहुत दिन पीछे मालूम हुई। उन्हें इसका घोर पश्चात्ताप हुआ। देशभक्त कोलादिरियेंची के अनुयायियों ने उसकी स्मृति-रक्षा के हेतु एक संगमर्मर की मूर्ति खड़ी कर दी।

सभोना रोला

पन्द्रहवीं शताब्दि के अन्त में फ्लोरेन्स में सभोना रोला का आविर्भाव हुआ। ये एक प्रसिद्ध धर्मोपदेशक थे। लेकिन जब उन्होंने राजाओं द्वारा निरंकुश अत्याचार देखे, और जनता त्राहि-त्राहि कर उठी तो, आप धार्मिक क्षेत्र छोड़कर

राजनैतिक क्षेत्र में आ कूदे। इन्होंने राजा और राजतन्त्र के विरुद्ध जगह-जगह उपदेश देना शुरू कर दिया। फ्लोरेन्स में तो प्रजातन्त्र स्थापित हो गया। गाँव-गाँव और नगर-नगर में सभोनारोला की तूती बोलने लगी। पोप उस समय एक ईश्वरीय प्रतिनिधि समझे जाते थे। सभी राजतन्त्रवादी राजा पोप के इशारों पर चलते थे, और ये पोप जो इन राजाओं की सहायता से धर्माधिकारी और राजनीतिज्ञों का विशेष स्थान प्राप्त किये हुए थे, रोला की इस बढ़ती हुई आवाज़ को न सुन सके। पोप और रोला में एक राजनैतिक वाद-विवाद छिड़ गया। अन्त में पोप ने जनता को विरुद्ध उभाड़ कर उसे जलती आग में फिंकवा दिया। इसके बाद आंदोलन की आग धीरे-धीरे सुलगती रही। देश में कई विशाल परिवर्तन हुए। फ्रांस और आस्ट्रिया इसे हड़पने और इसकी उठती हुई जागृति को कुचलने की चेष्टा करने लगे। फ्रांस और आस्ट्रिया ने इटली को बिलकुल कमज़ोर बना दिया। उसे अब स्वाधीन होने की कोई आशा न रही। इसी समय फ्रांस में राष्ट्र-विप्लव हुआ। फ्रांस की राज्यक्रांति की चिनगारियाँ समस्त यूरोप में फैलने लगीं। इसी राज्यक्रांति ने एक बार फिर इटली में स्वतन्त्रता की जागृति फैला दी। इटली के नवजवान, अपने देश की आज़ादी के लिये मर मिटने पर तत्पर हो गये। उन्होंने अपने देश को विदेशियों के पंजे से निकालने का पूरा निश्चय कर लिया। पर उसके पास ऐसा कोई साधन नहीं था, जिससे वे आंदोलन को आगे बढ़ाते। इसलिये उन्होंने कार्बोनारी नामक एक गुप्त संस्था स्थापित की। इसी संस्था के अन्तर्गत विद्रोह की भीषण तैयारी होने लगी। कार्बोनारी समिति में एक छात्र मैटसिनी था। मैटसिनी बड़ा ही उत्साही

युवक था। उसने समिति का दृढ़ संगठन किया। सन् १८२० ई० खुल्लम-खुल्ला विद्रोह की घोषणा की गई। परन्तु राज्य-शक्तियाँ इतना प्रचण्ड थीं, कि अन्त में यह विद्रोह असफल हो गया।

किन्तु इस असफलता से मैटसिनी हताश नहीं हुआ, वह और भी लगन के साथ काम करने लगा। एक "नूतन-इटली" नामक संस्था उसने कायम की। अपने अतुल परिश्रम और साहस से मैटसिनी ने नवयुवकों में फिर से नवजीवन डाल दिया। तमाम इटली नये जोश से भर गया। नूतन इटली की संस्था में जो भी भरती होता था, उसे कई एक प्रतिज्ञायें करनी पड़ती थीं, जिससे नवयुवक स्वाधीनता के उच्च भावों से भरे रहते थे। कुछ दिनों के बाद एकाएक फिर विद्रोह आरम्भ हो गया, किंतु इस बार भी कुचल दिया गया। इस विद्रोह में मैटसिनी के साथ देशद्रोहियों ने भीषण विश्वास-घात किया। मैटसिनी को देश छोड़कर भाग जाना पड़ा, विदेशों में भी मैटसिनी अपने देश की आज़ादी के लिये प्रचार करता रहा।

गैरीबाल्डी

नूतन इटली और मैटसिनी के अपूर्व प्रभाव ने गैरीबाल्डी को जन्म दिया। मैटसिनी जिस उद्देश्य की कल्पना कर रहा था, गैरीबाल्डी उसे कार्यरूपमें परिणित कर रहा था। मैटसिनी एक राजनीतिक-पंडित था, और गैरीबाल्डी रण-पंडित। इटली अपने दोनों पंडितों का बहुत ही मान करने लगा। इन्हीं दोनों वीरों के प्रयत्न से देश के भाग्य का सितारा फिर चमक उठा। वहाँ के प्रत्येक शासन-विभाग

को विदेशी सत्ता स्वीकार न करने का आग्रह किया गया। इस आग्रह का परिणाम यह हुआ कि शासन के प्रत्येक विभाग ने विदेशियों की हुकूमत पर ठोकर मार दी। इस घोषणा से आस्ट्रिया बिगड़ खड़ा हुआ और उसने प्रजातन्त्र-वादियों से घमासान युद्ध छेड़ दिया। गैरीवाल्डी बड़ी बहादुरी से इस युद्ध में कूद पड़ा। कई दिन के लगातार युद्ध में प्रजा-तंत्रवादी पराजित हो गये और इस बार भी इटली स्वाधीन होने से वंचित रह गया।

विक्टर इमानुएल काबूर

इटली के नाम-मात्र राजा विक्टर इमानुएल प्रजातन्त्र के पूर्ण-पक्षपाती थे। उन्होंने मैटसिनी और गैरीवाल्डी से सहयोग किया। इमानुएल का राजमन्त्री काबूर बड़ा ही रणकुशल और राजनीतिज्ञ थ। इतिहासकारों का कथन है कि काबूर की गुप्त मन्त्रणाओं से ही इटली स्वाधीन हो सका। मन्त्री ने राजा को सलाह दी, कि आप गैरीवाल्डी को तमाम सेनाओं का सेनापति बनाइए। मन्त्री की सलाह से गैरीवाल्डी सेना-पति बना दिये गए। सेना ने गैरीवाल्डी का अपूर्व स्वागत किया तमाम देश में उत्साह की एक नई लहर पैदा हो गई। अब गैरीवाल्डी की सेना में इटली के नवजवान धड़ाधड़ भरती होने लगे। किसान और मजदूर भी दूर-दूर से आकर गैरीवाल्डी की रण-तैयारी में सहयोग देने लगे। गैरीवाल्डी के सेनापति होते ही युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी गई और अवसर देखकर आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी गई। इस बार गैरीवाल्डी की धुआँधार सेना के आगे आस्ट्रियन सेना के पैर उखड़ गए। इस हार से इटली

आस्ट्रियनों के प्रभुत्व से मुक्त हो गया। देश में स्वाधीनता की लहर बह गई।

मुसोलिनी

गैरीवाल्डी के बाद इटली को मुसोलिनी नामक नेता मिला। मुसोलिनी ने इटली को एक नये ढंग के शासन-विधान में ला दिया। इस शासन विधान को "फैसिज्म" कहते हैं। फैसिज्म प्रजातन्त्र का घोर-विरोधी है। मुसोलिनी पहले एक स्कूल में शिक्षक थे। उनके राजनीतिक-विचार बड़े ही प्रबल थे। उन्हें अपने विचारों के कारण निर्वासन भी हुआ। लेकिन गैरीवाल्डी से भी अधिक साहस और परिश्रम मुसोलिनी में मौजूद था। देश के स्वाधीन हो जाने पर भी देश में सामाजिक और राजनैतिक एकता न थी। इस भिन्नता को एक कर देना ही मुसोलिनी का प्रथम कार्य था। अन्त में फिर राष्ट्र-विप्लव हुआ, और इटली के भाग्य-विधाता बन मुसोलिनी ने प्रजा-तन्त्रीय-शासन को तोड़कर फैसिज्मवाद फैलाया। फैसिज्म का सीधा-साधा अर्थ यही होता है कि अपनी निजी-सत्ता से शासन करना। इसमें किसी खास प्रजा-मंडलों से सलाह नहीं ली जाती। इसी आधार पर मुसोलिनी इटली में शासन कर रहे हैं। प्रजातन्त्र का कोई भी पक्षपाती उनके शासन-विधान के आगे सिर नहीं उठा सकता। मुसोलिनी यद्यपि प्रजातंत्र का विरोधी है, किंतु उसने इटली को संसार के आगे एक महान् राष्ट्र बना दिया। इटली की विशाल रण-वाहिनी सेना को देखकर संसार के छक्के छूट जाते हैं। मुसोलिनी की हुंकार सुन कर यूरोप काँप उठता है।

अबिसीनिया को इटली हड़प गया। समस्त संसार देखता

रहा। १९३८ में यूरोप में जो-जो नवीन परिवर्तन हुए हैं, वे सभी मुसोलिनी और जर्मनी के हिटलर की शक्तियों के परिचायक हैं। मुसोलिनी ने इटली को जो राष्ट्रीयता दी है, वह संसार में बहुत दिन तक जीवित रहेगी। फिर भी राजनीतिज्ञों का यह मत है कि फैसिज्म एक निरंकुश-शासनसत्ता है, जिसे प्रजातन्त्रवादी कभी स्वीकार नहीं कर सकते। एक दिन राजतन्त्रों की तरह यह फैसिज्म भी हवा की तरह उड़ जायगा।

इटली का भाग्य विधाता मुसोलिनी

संसार के इतिहास में आधुनिक इटली ने जो स्थान प्राप्त किया है, उसका गौरव वहाँ के मुसोलिनी को प्राप्त है। आधुनिक इटली का जन्मदाता और अपने देश को एक महान् राष्ट्र बनाने वाले इस महान् व्यक्ति से बहुत से लोग परिचित नहीं हैं। कल का निर्जीव इटली आज यूरोप का एक शक्तिशाली राष्ट्र गिना जाता है। मुसोलिनी ने बुद्धि और तलवार के जोर से यूरोप की राजनीति में एक विशेष स्थान प्राप्त किया है।

मुसोलिनी का जन्म २९ जुलाई सन् १८८३ ई० को एक लुहार के यहाँ हुआ था। बाल्यकाल में साधारण जीवन व्यतीत करता हुआ, मुसोलिनी धीरे-धीरे अपने जीवन के विकास की ओर अग्रसर हुआ। साधारण जीवन में, साधारण शिक्षा पाकर अपने घर का काम-काज देखने और सीखने लगा। लेकिन उसके इस साधारण जीवन में आधुनिक उन्नति के गुणों का विकास होते देख उसके पिता ने उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न किया। कुछ समय पश्चात् मुसोलिनी अध्यापकी

पास कर शिक्षक-जीवन व्यतीत करने के लिये तैयार हुआ। लेकिन उसकी अन्तरात्मा ने इसे रोका, वह स्विट्ज़रलैंड जाकर अपना एकांत जीवन व्यतीत करने लगा। युवक जीवन में मुसोलिनी ने कभी भी खाना-पीना, खेल कूद और तमाशे में अपनी जिंदगी का एक अणु-मात्र भी खर्च नहीं किया। यहीं से उसने राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया। स्विट्ज़रलैंड में उसने कई व्याख्यान दिए, जिससे वहाँ से उसे भागना पड़ा। वह फिर इटली आकर सेना में भरती हो गया। इसी समय मुसोलिनी की माता का देहान्त हो गया, जिससे उसके जीवन का पासा पलट गया। सैनिक के रूप में वह घर वापिस आ गया—

कुछ समय तक वह अपने घर काम-काज की देख रेख करता रहा। इसके बाद उसका परिचय एक पत्रकार से हो गया। उसने शीघ्र ही पत्र-संचालन-कला का अनुभव प्राप्त कर, एक समाजवादी पत्र का संचालन किया। पत्र का नाम था अवन्ति। यह वह जमाना था, जब कि यूरोप के देशों में बहुत जल्दी लोहा बजने वाला था। यूरोप एक बारूदखाना बन रहा था, उसमें सिर्फ एक चिनगारी भर छोड़ने की देर थी। इटली में भी कुछ सरहदी जमीनों पर कब्जा कर लेने के लिये एक जोरदार आंदोलन उठ रहा था। मुसोलिनी भविष्य पर अपने भाग्य को छोड़ जोरों से राजनीति में भाग लेने लगा। "अवन्ति" के जोरदार लेखों से जनता मुसोलिनी की ओर आकर्षित हुई। समाजवादी नीति के अनुसार पत्र-संचालकों ने इतने जोरदार लेख लिखने पर उसे पत्र-संपादन से अलग कर दिया। लेकिन मुसोलिनी के जीवन में पराजय होना या निराश होना लिखा ही नहीं था। उसने थोड़े से

जीवन में उसे पद पद पर निराशा और असफलता का सामना करना पड़ा किन्तु ज्यों ही उसे निराशा पकड़ती थी, त्योंही वह उसे ठोकर मारकर एक नये उत्साह के साथ आगे बढ़ता था। अतएव उसने अपने विचारों को फैलाने के लिये अपने साथियों की सहायता से, "पोपलोदि इटालियन" नामक पत्र निकाला। कुछ दिनों में यह पत्र इटली का एक सर्व-श्रेष्ठ पत्र बन गया। इस पत्र के द्वारा मुसोलिनी ने अपने देश की महान् सेवा की। इस समय यूरोप में धुवाँधार युद्ध छिड़ चुका था। इटली ने भी इसमें भाग लिया। मुसोलिनी सिपाही बन कर युद्ध-क्षेत्र में काम करने चला गया। विजय होने के बाद भी इटली ज्यों का त्यों बना रहा। न तो उसमें कोई राजनैतिक सुधार ही हुए, और न वह अपनी जमीनें शत्रुओं के हाथ से ले सका। युद्ध के बाद इटली की दशा और भी खराब हो गई। इटली में घरू फूट के कारण कई राजनैतिक दल हो गए। विरोधी शक्तियों की इटली क्रीड़ा-भूमि बन गई। संसार में इटली की आर्थिक-दशा इतनी दीनता पर पहुँच गई कि जरा सी ठोकर मात्र से ही संसार से उसका नामो-निशान मिटने में कसर नहीं थी। मुसोलिनी, अपने देश का अन्तर्जीवन भली भाँति अध्ययन कर उसके सुधारने में अग्रसर हुआ।

२३ मार्च सन् १९१९ को फासिस्ट कार्य-क्रम तैयार किया गया जिसका एक मात्र उद्देश्य था, इटली को विरोधी शक्तियों के पंजों से छुटकारा दिलाकर एक समृद्ध-शाली राष्ट्र बनाना। मुसोलिनी ने नवजवानों का एक जबरदस्त दल तैयार किया। इस दल का नेता वह स्वयं बन गया। यही दल अन्त में इटली के भाग्य का विधाता बन गया। पहले चुनाव-संग्राम

में मुसोलिनी हार गया। लेकिन इस हार से उसमें निराशा की झलक दिखाई नहीं दी। वह बड़ी तेजी से अपने दल का संगठन करने लगा। "फासिज्म" दल में हजारों नवयुवक भरती हो गए। इस फासिज्मवाद का एक सिद्धान्त था, अपने देश को बाहरी शत्रुओं से बचाना। मुसोलिनी ने फासिज्म सेना तैयार कर ली। इटली राजा ने मुसोलिनी की बढ़ती हुई ताकत को देखकर राज्यभार सँभालने के लिये उसे निमन्त्रित किया। इस तरह शासन-सूत्र अपने हाथ में लेकर मुसोलिनी अपने देश के राजनीतिक संगठन में अग्रसर हुआ। उसने शीघ्र ही इटली में एक नई जान डाल दी। सभी शक्तियों को एक कर विरोध शक्तियों और भिन्न २ दलों को नष्ट कर दिया। संसार मुसोलिनी के अद्भुत करिश्में देखकर चकित हो गया। उसने थोड़े ही वर्षों में, अपनी सैनिक शक्ति और अपने देश की सम्पत्ति को इतना अधिक बढ़ा लिया, कि वह अकेला ही कई शक्ति-सम्पन्न-राष्ट्रों से लोहा ले के। इटली का प्रत्येक नवजवान मुसोलिनी के इशारे पर मर मिटने को तैयार हो गया। इटली की समस्त आर्थिक-दशाओं में महान् परिवर्तन हो गया। सैकड़ों कार-खाने खोल दिये गए और फौजी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

मुसोलिनी को सादगी बहुत ही पसन्द है। सिगरेट या शराब पीना वह जानता ही नहीं। उसके सामने सिर्फ एक उद्देश्य था—उसके सिर पर एक ही धुन सवार थी—"इटली को संसार में सर्व-प्रथम राष्ट्र बनाना।" उसने स्वयं कहा था-

मैं अपने लिये कुछ नहीं माँगता। मुझे अभिनन्दन पत्रों की तारीफ पसन्द नहीं। मेरा तो सिर्फ एक ही उद्देश्य है—

अपने देश को इतना ऊँचा बना देना, जिससे सभी उससे भय करें।

इस महापुरुष में एक विशेषता नहीं कई विशेषताएँ थी। उसे अपनी शक्ति और भाग्य पर अटल विश्वास था। वह असफलता को महान् सफलता समझता था। जीवन की निराशाओं को महान् आशाएँ जानकर अपनाता था। वह घटनाओं से विक्षिप्त नहीं होता था। उदासीनता उसके पास नहीं फटकती थी। जीवन के हरएक क्षण में वह अपनी सफलता देखता था।

मित्रों के विचारों से वह कभी सहमत नहीं होता था। उसका यह कथन उपयुक्त है, कि मित्रों के विचारों से वही सहमत होते हैं, जिनके विचार स्वयं निर्बल होते हैं। इसका सीधा-साधा अर्थ यही होता है, कि मुसोलिनी जो सोचता था वही होता था। उसमें विचार-विनिमय की आवश्यकता नहीं।

यद्यपि आज हम मुसोलिनी के "फासिज्म वाद" से सहमत भले ही न हों; लेकिन यह हमें मजबूरन मानना पड़ेगा कि मुसोलिनी का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा और प्रभावशाली था। मुसोलिनी का जीवन, सफलता की एक कुंजी थी। गैरीबाल्डी और मेजिनी के नामों के साथ, इतिहास में मुसोलिनी का नाम भी अमर रहेगा।

———:-❋-:———

टर्की की राज्यक्रान्ति

एशियाई राज्यों में सर्व-प्रथम, जागृति टर्की में हुई। इसके पहिले चीन में भी सन् १६०१ में एक भीषण क्रांति हो चुकी थी। संसार की शक्तिशाली जातियों में टर्की के आदिम-निवासियों ने ही सबसे पहिले आजादी का तूफ़ान खड़ा किया था। संसार में उनके कई स्वतन्त्र राज्य आज भी स्थापित हैं। संसार के सभी मुसलमान टर्की को एक महत्वपूर्ण स्थान समझते हैं। इतना ही नहीं वे ईश्वरोपासना के समय भी टर्की के सुल्तान का नाम बड़े गौरव से लेते हैं। टर्की यूरोपीय और एशियाई दोनों महाद्वीपों का राज्य है। इसके आधीन कई ईसाई राज्य हैं। इस कारण टर्की की राज्यनीति में दखल देने के लिये अन्य देशों को काफी मौका मिल जाता है। टर्की बड़ा प्रभावशाली राज्य है। टर्की के साथ ईसाईयों की सदा से छेड़छाड़ बनी रहती है। टर्की-साम्राज्य का इतिहास सन् १२६७ ई० से आरम्भ होता है। इस विशाल साम्राज्य को उसमान नामक एक वीर युवक ने स्थापित किया था। इस युवक का प्रधान लक्ष था कि हमारे साम्राज्य में न्याय ही सर्वप्रधान रहे और किसी के साथ जरा भी अत्याचार न किया जावे। परन्तु बहुत से सर्दार इस शांतिमय-अमन को पसंद नहीं करते थे। उन्हें लूट-मार बहुत अधिक पसन्द थी। इसलिये उसमान को उनके साथ कठोरता का व्यवहार करना पड़ा। उसमान के राजत्वकाल में टर्की में आशातीत उन्नति हुई। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों और इतिहासों से पता मिलता है, कि पूर्व समय में यहाँ आर्यों का विशाल साम्राज्य स्थापित था। सन् १३२६ ई० में उसका मृत्यु काल आ पहुँचा। उसने

समस्त राज्य-भार अपने बेटे उरखान को सौंप, प्रजा के साथ न्याय करने की कड़ी हिदायत की। उरखान और उसके भाई अलाउद्दीन ने अपने राज्य की बहुत कुछ सीमा बढ़ाई। इसी कारण निकटवर्ती ईसाई राज्यों से उनका युद्ध छिड़ गया, वही युद्ध आज तक चला आता है। उरखान के समय में कई भीषण राज्यक्रांतियाँ और घरू झगड़े प्रारम्भ हो गये। कई खानदान टर्की की राजगद्दी के लिये छीना-झपटी करने लगे। सोलहवीं सदी में सुलेमान नामक व्यक्ति गद्दी पर बैठा। इसने राज्य में अनेकों सुधार किये। इसने अपने राज्य की सीमा एशिया में फारस तक और यूरोप में जर्मनी तक बढ़ाई। अफ्रीका, मिश्र आदि सभी देश टर्की के सुलतान का लोहा मानते थे। भूमध्य-सागर, लाल समुद्र आदि टर्की के ही आधीन थे। किंतु यह साम्राज्य स्थायी नहीं रहा। सन् १५६६ ई० में सुलेमान ने केवल ४६ वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग किया। सुलेमान की मृत्यु से टर्की साम्राज्य को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। लोगों का कथन है कि सुलेमान सरीखा बादशाह आज तक नहीं हुआ। सुलेमान के बाद उसका बेटा सलीम गद्दी पर बैठा। सलीम में राज्य करने की शक्ति नहीं थी, इससे उसपर बाहरी शत्रुओं ने आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। टर्की के बहुत से टापू ईसाई राज्यों ने छीन लिये। रूस ने भी टर्किश फौज को कई स्थानों पर हराया। सलीम के दुर्गुणों से सुलेमान का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

स्वार्थी मन्त्रियों और कमजोर बादशाहों के कारण टर्की का विशाल साम्राज्य अवनति के तूफान में पड़ गया। जिसने बीस-बीस हजार फौजों को हराया था, वही अनेक स्थानों पर पराजित होने लगी। इसका एक और भी कारण

था, कि जनता में स्वदेश-भक्ति और जातीयता शेष नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि टर्की को सभी बाहरी शत्रुओं से सन्धि करनी पड़ी, और सन्धि के हरजाने में अपनी भूमि देनी पड़ी। कई ईसाई रियासतें जो टर्की के आधीन थीं, स्वतन्त्र कर दी गईं। सर्विया, माउण्ट नीग्रो, रूमानिया आदि प्रदेश स्वतन्त्र कर दिये गये। यह टर्की के लिये बड़ी लज्जाजनक बात थी। इस युग के बाद—

टर्की का नवीन युग—

बीसवीं सदी से प्रारम्भ होता है। इस समय टर्की के बहुत से युवक विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। जब वे शिक्षा प्राप्त कर लौटे, तब उन्होंने स्वाधीनता का युग प्रारम्भ किया। उन्होंने पेरिस में एक सभा करके यह निश्चित कर लिया, कि टर्की को शक्तिशाली और एक महान् स्वतन्त्र-राष्ट्र बनाया जावे। पुरानी शासन-प्रणाली को एकदम उठा देने का भी निश्चय किया गया। स्वदेश लौटने पर उन्होंने जनता में उत्तेजना फैलाने का कार्य शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने सिपाहियों और जनता को अपनी तरफ आकर्षित कर लिया और गुप्त रूप से एक बड़ी भारी विप्लव की तैयारी कर ली। २२ जुलाई सन् १९०८ को विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। सुलतान ने जब देखा कि समस्त सेना बागी हो गई है तो उसने उसका मुकाबला नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि एक नवीन शासन प्रणाली स्थापित हो गई।

(१) पुराने किस्म के टैक्स हटा दिये गये।

(२) प्रेसों को पूर्ण स्वाधीनता दी गई।

(३) राज्य कर्मचारियों में परिवर्तन कर दिये गए।
(४) एक पार्लियामेन्ट स्थापित की गई।
(५) कानूनों में बहुत से फेरफार किये गये।
(६) मुकदमों के निरीक्षण होने लगे।
(७) फ़ौजों में सुधार जारी किये गए।
(८) स्कूलों और कालेजों की तरक्की की गई।

इतना सब हो जाने पर भी विद्रोही जनता शान्त नहीं हुई। उसको सुल्तान के प्रति सन्देह होने लगा। सुल्तान अब्दुल बहुत-सा धन, राज्य-कोष से खर्च करता था। लोगों की शंकाएँ दिनों दिन बढ़ने लगीं। एक दिन पार्लियामेन्ट की एक बैठक में एक सदस्य ने सवाल किया कि शाही खज़ाने से रूस को बेहद रुपया भेजा जाता है, उसका कारण क्या है? इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया। लेकिन पीछे यह मालूम हो गया कि, सुलतान भीतर ही भीतर इस आन्दोलन को दबाने के लिये रूसी फौजों की मदद चाह रहे थे। कल्पना सच निकली। सुल्तान ने विद्रोही फौज को अपनी तरफ मिला कर आन्दोलनकारियों की हस्ती को कुचल दिया। सुल्तान ने अपने विपक्ष का वायुमंडल साफ कर दिया। किंतु सुल्तान को स्वप्न में भी यह खबर नहीं थी कि विपक्षी दल भी खामोश नहीं रहेगा। इस समय मुहम्मद शफकत पाशाने बड़ी बहादुरी से विद्रोही जनता को इकट्ठा कर किस्तुनतुनियाँ पर धावा बोल दिया। वे बड़ी वीरता से लड़ते हुए राजभवन के पास पहुँचे, और सुल्तान को गद्दी से उतार कर सालोनीका भेज दिया। इसके बाद छोटा-सा बालक सुल्तान के पद पर बैठाया गया और राज्य का समस्त भार नवीन दल के हाथों में आ गया। इस दल में ईसाई-मुसलमान-पारसी-यहूदी सभी सदस्य शामिल किये गये।—

इसके बाद यूरोपीय महायुद्ध छिड़ा, जिसमें टर्की ने जर्मनी का साथ दिया। इस युद्ध में टर्की को भीषण क्षति उठानी पड़ी। एशिया में उनके पास अनाटोलिया प्रान्त और यूरोप में सिर्फ कान्स्टेंटिनोपुल रह गया। यही उसके वर्तमान राज्य का स्वरूप है। महायुद्ध के बाद टर्की को बागडोर गाजी-मुस्तफा कमालपाशा के हाथ में आ गई। मुस्तफा कमालपाशा एक सैनिक थे, उन्होंने गए महायुद्ध में बड़ी बहादुरी के साथ अपने देश का मस्तक ऊँचा किया था। कमाल के कमाल ने टर्की को एक जिन्दगी में परिवर्तन कर दिया। पुरानी शासन-प्रणाली उखाड़ कर फेंक दी गई। कमालपाशा ने अनेक सामाजिक सुधार जारी किये, और एक नवीन टर्की की रचना की। खलीफा की तख्तनशीनी और मुल्लापने के शासन को एकदम नष्ट कर दिया। इस तरह उन्होंने प्रजातंत्र के शासन को अधिक शक्तिशाली बना डाला। अरबी वर्णमाला और अरबी-सन् वगैरह सब नष्ट कर दिये गए और मातृ-भाषा टर्की का प्रचार किया जाने लगा। यहाँ तक कि यूरोपीय सभ्यता को भी कमालपाशा ने अपने देश में स्थान दिया।

टर्की का अधिकांश व्यापार विदेशियों के हाथ में था जिससे वहाँ का अधिक धन विदेशों को चला जाता था। कमालपाशा ने इन विदेशी-व्यापारियों को अपने देश से शीघ्र ही निकाल बाहर किया। जो विदेशी व्यापारी वहीं बस गये थे, उन्हें वहाँ का नागरिक बनकर रहना पड़ा। कमाल-पाशा ने अंगोरा को अपनी राजधानी बनाई। कुस्तुनतुनियाँ से सभी विदेशी व्यापारी अपने-अपने देश को खिसक गए। इसपर फ्रांसिसियों ने तुर्क सरकार को धमकी दी, कि

अगर तुम हमारे व्यापारियों को व्यापार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता न दोगे, तो तुम्हारे साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा। लेकिन कमालपाशा ने इसकी जरा भी परवाह नही की और फ्रांस के व्यापारियों को भी वहाँ से रास्ता नापना पड़ा। इस वीर पुरुष की मृत्यु सन १९३८ के नवम्बर मास में हो गई।

कमालपाशा के सुधार

यद्यपि कमालपाशा इस संसार में नही हैं तथापि टर्की की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को सुधारने में उन्होंने चोटी का पसीना एड़ी तक बहा दिया था। अपनी मातृभूमि की सेवा करने में वह इतना मग्न रहते थे कि उनसे अपनी माता और मित्रादि से कभी पटती न थी। जान हमेशा खतरे में रहने पर भी वे निर्भयतापूर्वक दुश्मनों में घुस पड़ते थे और बिना अपनी बात का अनुमोदन कराये नहीं हटते थे। उनकी वाक्‌शक्ति में इतना प्रवाह था कि उनके कट्टर से कट्टर विरोधी उनके पक्ष में हो जाते थे।

उन्होंने टर्की को संसार के समस्त शक्तिशाली राष्ट्रों के आगे अपनी फौजों को एक संगठित रूप में तैयार किया। अपने देश की अच्छी तरह नाके-बन्दी की। समाज सुधार में टर्की की समस्त प्राचीन-प्रणाली उठा दी। कानून-विभागों से मुल्लाओं का जोर उठा दिया। मजहब के अनुसार जो कानून बने थे, उनमें परिवर्तन कर दिये। यहाँ तक कि दरबार में आने के लिये विशेष राष्ट्रीय-पोशाकें नियत कर दीं।

टर्की की इस महान् राज्यक्रान्ति का प्रभाव समस्त एशिया पर पड़ा। इसी समय अफगानिस्तान में अमीर हबीबुल्ला ने अंग्रेजों के चुङ्गल से अपने देश को मुक्त कर लिया। अमीर हबीबुल्ला के बाद अफगानिस्तान के शासन-सूत्र का बागडोर अमानुल्ला के हाथ में आ गई।



अफगानिस्तान की राज्यक्रान्ति

भारत और रूस के बीच में होने से अफगानिस्तान एक महत्वपूर्ण देश है। इसे (buffere state) मध्यवर्ती राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त है। इस देश का बहुत सा भाग पथरीला होने के कारण यह खेती आदि के लिये उपयुक्त नहीं है। अधिकांश प्रदेश पहाड़ी है फिर भी सिंचाई आदि से अनाज और फल उत्पन्न किये जाते हैं। खनिज पदार्थों में लोहा और कोयला भी अधिक पाया जाता है। कंधार में एक सोने की खान है। बेशकीमती पत्थर भी यहाँ मिलते हैं। यह भारत का एक प्राचीन नगर माना जाता है। आर्य-धर्म शास्त्रों में यहाँ आर्यराजाओं का राज्य-शासन था। काबुल को कैकय देश कहते हैं। महारानी कैकयी इसी देश की थीं, जो अयोध्या के महाराजा दशरथ की तीसरी पत्नी थीं।

अफगानिस्तान के आस पास तथा उसी देश में आर्यराजवंशों के स्मृति-चिन्ह अब भी पाए जाते हैं। बगदाद और

मिसर के प्रदेशों में पुराने आर्य-मन्दिर और मठों के अवशेष-स्मृतियाँ अब भी हैं। लेकिन अधिकांश राजनीतिक सभ्यता ने अपनी संस्कृति और धर्म के फैलाने में उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अफगानी-व्यापार

अफगानिस्तान में रेल नदियाँ और अच्छी सड़कें न होने से वह व्यापार में आगे नहीं बढ़ सका। अधिकांश व्यापार ऊँटों और भेड़ बकरियों द्वारा होता है। लेकिन अब व्यापार का क्षेत्र बढ़ाने के लिये अधिक से अधिक उपाय सोचे जा रहे हैं। मोटर-रोड और रेलवे लाईन बनाने के कार्य आरम्भ कर दिये गए हैं। इन नवीन सड़कों के बन जाने से एशिया और यूरोप के आवागमन का मार्ग खुल जावेगा। ब्रिटिश-सरकार को इस नवीन योजना से एक तरह बड़ा भारी भय पैदा हो गया है। क्योंकि फिर वार्सा और बर्लिन तक सहज ही में आना जाना हो सक्ता है। अफगानिस्तान चारों ओर से रेलवे की पाँतों से घिरा है, परन्तु स्वयं उसके प्रदेश में अच्छी रेलवे लाइनें नहीं हैं। रूस की रेल हिरात तक आती है। इसी तरह ब्रिटेन की रेल लंडीकोतल तक आती है, इससे आगे सुगम रास्ते नहीं हैं। बेतार के तारों के स्टेशन भी बनाए जा रहे हैं। इसके लिये फ्रांसिसी और जर्मन विशेषज्ञ नियुक्त हैं। इस देश के व्यापार का संबन्ध विशेषकर रूस और भारतवर्ष से है। फ्रांस और जर्मनी में भी थोड़ा बहुत व्यापार होता है। अफगानी-व्यापारिक संधियाँ, इटली, जापान आदि देशों से भी हैं। अफगानिस्तान को भारतवर्ष के रास्ते से बिना किसी रोक-टोक के अपना माल ले जाने की पूरी स्वतन्त्रता है। हिन्दुस्तान

से रेशम, रूई, कागज़, कपड़ा, चाय, रंग, चांदी आदि वस्तुएँ वहाँ जाती हैं, और वहाँ से चमड़ा फल-फूल, घोड़े, गलीचे आदि भारतवर्ष में आते हैं। गलीचों की क़ारीगरी के लिये अफ़गानिस्तान बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ के सुन्दर गलीचे संसार भर में प्रसिद्ध हैं। जर्मनी और फ्रांस से आनेवाली चीज़ों में अधिकतर लोहे की मशीनरी और लड़ाई के सामान ही होते हैं। उद्योग धंधों की काफ़ी उन्नति इस देश में नहीं है।

बादशाह अमानुल्ला के पहिले अफ़गानिस्तान एक धर्म-प्रधान देश था। उसे लोग जंगली मुल्क कहते थे। सारा देश विदेशों की वस्तुओं पर निर्भर था। अमानुल्ला ने इस कमी को दूर करने के लिये काफ़ी प्रयत्न किये। काबुल में कई कारखाने खोले गए, जिनमें बर्छी-भाले और पिस्तोलें तैयार होने लगीं। बहुत से नवजवान विदेशों में उद्योग-धन्धों की कला सीखने के लिये भी भेजे गए।

अफ़गानिस्तान की आय

अफगानिस्तान की आय ५ करोड़ से अधिक है, इतने बड़े देश के लिये इतनी छोटी रकम उसकी उन्नति के लिये उपयुक्त नहीं है। अमानुल्ला की सरकार ने आय को बढ़ाने के लिये अधिक प्रयत्न किए ? कृषि-शालाएँ और वाणिज्य व्यापार को बढ़ाने के लिये जनता को अनेक तरह के प्रोत्साहन दिये। अफगानिस्तानी अख़बारों में, "अफग़ान" और इत्तेहादे मश-रकी—बहुत मशहूर हैं। गैर सरकारी अख़बार भी अब बहुत निकलने लगे हैं। यहां पर मालगुजारी भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में देने की प्रथा है। सोने और चांदी के सिक्के भी चलते हैं। काबुली रुपया भारत में भी बहुत देखे जाते हैं। क़ाबुली-

रुपयों को भारतीय, जंतर समझ कर अपने पास रखते हैं। काबुली रुपया पैसे के बराबर होता है।

कानून और राज्य-शासन

अमानुल्ला के राज्य-शासन के पहिले, यहाँ कुरानी कानून प्रचलित थे, और सभी इंसाफ कुरान की आयतों से हुआ करते थे। अदालतों में मौलवी और मुल्लाओं की भरमार थी। कुरानी कानूनों के अनुसार ब्याज लेना एक गुनाह समझा जाता है। इससे अभी तक यहाँ बैंकों का भलीभाँति प्रचार नहीं हो सका। लेकिन अमानुल्ला ने इन सभी मजहबी कानूनों को देश की तरक्की में बड़े ही भयंकर बाधक ठहराए और उनमें बहुत अधिक परिवर्तन किये, जिसका परिणाम यह हुआ कि मजहबी कानून हटाने के कारण वहाँ एक बड़ा भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ।

बादशाह अमानुल्ला खाँ और अफगानिस्तान

अफगानिस्तान का अभ्युदय सन् १९१९ की २० फरवरी से प्रारम्भ होता है। इसी तारीख को अमानुल्ला खाँ अफगानिस्तान की गद्दी पर तख्तनशीन हुए थे। आप अमीर हबीबुल्ला के तीसरे पुत्र थे। आप बड़े उच्च विचारों के व्यक्ति थे। फारसी, उर्दू, फ्रेंच, तुर्की और अंग्रेजी आप अच्छी तरह से जानते थे। सन् १९१९ ई० तक अफगानिस्तान अंग्रेजों के संरक्षण में था। उसे भारत-सरकार से प्रति वर्ष १८ लाख रुपया मिलता था और उसके बदले में उसे कई मामलों में अंग्रेजों का मुँह ताकना पड़ता था। सन् १९१९ ई० में अमानुल्ला खाँ ने गद्दी पर बैठते ही इन १८ लाख रुपयों पर लात

मार दी। इस समय रूस में सोवियट शासन हो चुका था। अमानुल्ला खाँ ने अमीर पद को मिटाकर बादशाह पद की घोषणा की। बादशाह ने रूस से एक नवीन संधि करके अपने देश के स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अंग्रेजों को यह नवीन संधि और बादशाह की मनमानी योजनाओं पर बड़ा गुस्सा आया। अंग्रेजों ने शीघ्र ही अफगानिस्तान पर चढ़ाई कर दी और अफगानिस्तान में हवाई जहाज द्वारा गोले बरसने लगे। लेकिन अफगानिस्तान को पीस डालना कोई साधारण बात नहीं थी। अफगानी सिपाहियों ने अंग्रेजों का भरपूर मुकाबला किया! पहिले ही मुकाबले में अंग्रेज लोग पीछे हट गये और बड़ी भारी हानि के साथ वापस हुए। पहिले तो भारतीय फौजों में वह शक्ति थी नहीं, जिसे ये अफगानिस्तान के अफगानी वीरों के सामने खर्च करते, क्योंकि यूरोपीय महासमर इसी समय बन्द हुआ था। भारतीय सिपाही थके मांदे थे। दूसरे अफगानिस्तान में सिर्फ हवाई जहाजों से धावा हो सकता था। स्थल मार्ग इतने सुभीते के नहीं हैं, जिससे की पैदल सेना और रिसाले वहाँ तक शीघ्र पहुँच सकें। खैबर की घाटियों का एक जबरदस्त दर्रा इस आवागमन के मार्ग का सदा से बाधक है। इस रास्ते से पैदल सेनाओं के आने जाने में बड़ी-बड़ी रुकावटें होती हैं। दस हजार सेना के आने-जाने पर ३-४ हजार सिपाही तो रास्ते ही में मर जाते हैं। फिर रास्ते भी इतने तंग हैं कि वहाँ से फौजें आ जा नहीं सक्तीं। इसी खैबर के दर्रे में एकबार समूची अंग्रेजी-पल्टन काटकर फेंक दी गई थी और बड़ी मुश्किल से दस पाँच सिपाही बचकर निकले थे। इसी समय भारतीय आंदोलन भी खूब जोरों से चल-निकला, जलियानवाला बाग

का भीषण हत्या-कांड भी इसी समय हुआ। समय को अनुकूल न देख कर अंग्रेजों ने सन् १९२१ ई० की २२ नवम्बर को संधि कर ली।

इस संधि से अफगानिस्तान बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया। उसकी वैदेशिक नीति पर ४० वर्ष से जो नियंत्रण था, उसे अंग्रेजों को हटा लेना पड़ा। अफगानिस्तान की पूर्ण स्वतंत्रता अंग्रेजों को स्वीकार करनी पड़ी। इस नवीन और क्रांतिमय संधि से अफगानिस्तान को लन्दन में अपने राजदूत रखने और दिल्ली-कलकत्ता आदि शहरों में अफगान आफिसर नियुक्त करने के पूर्ण अधिकार मिले। व्यापारिक संधियों में अफगानी माल को बिना रोक टोक के ले जाने की अनुमति प्राप्त हो गई।

इसके बाद अफगानिस्तान को संसार के राजनीतिक राष्ट्र में स्थान मिल गया। टर्की, ईरान, फ्रांस और जर्मनी आदि यूरोपीय राष्ट्रों से मैत्री की सन्धियाँ कीं। इन राष्ट्रों ने अफगानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार की। अफगानिस्तान का प्रभाव संसार के राष्ट्रों में फैलने लगा है। अफगानिस्तान के राजदूत, पेरिस, बर्लिन आदि देशों में भेजे गए। इसके बाद बादशाह अमानुल्ला खाँ ने यूरोप की यात्रा की। इस महान् यात्रा से अफगानिस्तान की राजनैतिक शक्ति भी विदेशों में फैलने लगी। अँग्रेजों की मंशा यह नहीं थी, कि बादशाह अमानुल्ला संसार को अपना मित्र बनावें। बादशाह इंगलैण्ड से रूस जाने को तैयार हुए। रूस-यात्रा से अँग्रेज सरकार घबरा उठी। उसने अनेकों उपायों से इस यात्रा को रोकना चाहा। लेकिन अमानुल्ला खाँ अपने प्रोग्राम को न बदल सके; और वे रूस के लिये रवाना हो गए। रूस-

अफगानिस्तान की मैत्री अँग्रेजों के हित में बाधक थी। भारत की रक्षा के लिये यह सन्धि संदेहपूर्ण हो उठी।

जिस समय बादशाह रूस आदि की यात्रा कर रहे थे; उस समय कुछ चतुर राजनीतिज्ञों ने जिनमें ब्रिटेन का भी हाथ था, अमानुल्ला खाँ के विरुद्ध अफगानिस्तान में प्रचार करना शुरू किया, जिससे अशिक्षित अफगानी जनता में भय और क्षोभ उत्पन्न हो गया। ब्रिटेन की चालबाजी असर कर गई। फलतः अफगानिस्तान बादशाह के पंजे से निकल गया। मौलवियों और मुल्लाओं ने बादशाह के विरुद्ध जहर उगलना शुरू कर दिया। इसमें एक धार्मिक और राजनीतिक रहस्य और था। राजनीतिक रहस्य यह था कि जिस समय बादशाह अमानुल्ला खाँ यूरोप-यात्रा को भारत से रवाना हुये तो उन्होंने बम्बई की एक महती-सभा में जोरदार भाषण दिया था। यह भाषण अँग्रेजों के हृदय में शूल की तरह खटका। इस सभा में माता-कस्तूरी बाई उपस्थिति थीं। अमानुल्ला खाँ ने माता कस्तूरी बाई का अभिवादन टोप उतार कर किया। बादशाह की यात्रा की सफलता के लिये महात्मा गाँधी का संदेश भी उन्हें दिया गया।

इससे अँग्रेज और जल-भुन गए। दूसरा कारण यह था कि बादशाह अमानुल्ला खाँ के साथ उनकी बेगम सूरिया भी थीं। बम्बई से जहाज पर बैठते ही उन्होंने परदा फेंक दिया और खुले मुँह यूरोप भ्रमण किया। इस्लाम के धार्मिक नियमों में पर्दा का विशेष महत्व माना गया है। बेगम के पर्दा उतार फेंकने पर समूचे देश में भीषण क्रान्ति की लहरें उठने लगीं।

यूरोप से लौटने के बाद बादशाह ने जो नवीन सुधार

किए उनसे जनता और भी विचलित हो उठी। बादशाह ने [जिरगा] याने पार्लियामेन्ट के सदस्यों को दाढ़ी मुड़वाने और अँग्रेजी-पोशाक में आने का आदेश दिया। तमाम दरबारी सदस्यों की दाढ़ियाँ मुड़वा दी गईं। अभी तक जिरगों के जो मेम्बर थे वे जमीन पर कालीनों पर बैठते थे। उन्हें हुक्म दिया गया कि वे कुर्सी और बेंचों पर बैठा करें। बादशाह ने एक और भी सुधार किया जो इस्लामी नियमों के बिलकुल ही विपरीत था; वह बहु-विवाह निषेध कानून था, जो एक साथ समस्त देश पर लागू कर दिया गया। राजकर्मचारियों को एक से अधिक स्त्री रखना जुर्म करार दिया गया। बादशाह ने स्वयं एक पत्नी रखकर एक उदाहरण पेश किया। इन तमाम सुधारों से ढोंगियों तथा मूर्ख मुल्लाओं के मतों में भीषण परिवर्तन हो गया। मौलवियों को अपना धर्म प्रचार करने के लिये एक लाईसेंस प्राप्त करने को बाध्य होना पड़ा। इन नियमों के विरुद्ध प्रचार करने वाले ३० मुल्लाओं को गिरफ्तार किया गया। पदवियों और तगमों का रिवाज भी उठा दिया गया।—

राजनीतिज्ञों का कथन है, कि बादशाह ने यूरोप से लौटकर नवीन सुधारों को देश में जारी करने में बहुत ही शीघ्रता की। अगर ये सुधार धीरे धीरे किये जाते. तो अफगानिस्तान में होने वाली क्रान्ति न हो पाती। इन्हीं सुधारों से जनता ने धर्म नष्ट होने की संभावना देखी। बादशाह के पक्ष में जनता पहिले ही से संदेहयुक्त थी। अब धीरे-धीरे आग सुलगने लगी, इस महान् क्रान्ति का नेता बच्चा-सक्का नामक एक भिश्ती बना। इसने पहिले अफगानिस्तान के आसपास जोरों से प्रचार किया, जिससे हजारों

लोग इसके साथ हो गए। अपना अपूर्व सैन्य-संगठन कर इसने धीरे-धीरे तमाम देश में धुआँधार आँधी खड़ी कर दी। काबुल पर जोरों से हमला किया गया। बादशाह को राजधानी छोड़ देनी पड़ी। दिनों-दिन बच्चा-सक्का का जोर बढ़ता ही गया, उसने काबुल को विजय कर फ़तह का झंडा गाड़ दिया।

सेनापति-नादिरशाह

सेनापति नादिरशाह अमानुल्ला खाँ के दाहिने हाथ थे। ये बड़े विश्वास-पात्र और स्वामिभक्त थे। इन्होंने अफ़गानी सेनाओं में बहुत से नवीन सुधार किये। पहिले अमीर हबीबुल्ला के समय में सेनाओं को वेतन के रूप में कुछ अनाज और खाद्य-पदार्थ ही मिलते थे। नादिरशाह इस स्कीम को मिटाकर-सिक्कों के रूप में वेतन देने लगे। फौजी सिपाहियों ने इसे भी धर्म-विरोधी कार्य समझा, जिससे तमाम फ़ौजी सिपाही बिगड़ उठे। इससे बादशाह ने नादिरशाह को फ्रांस में राजदूत बनाकर भेज दिया। जिस समय यहाँ बच्चा-सक्का अपना अधिकार जमा रहा था, उसी समय नादिरशाह फ्रांस से अफगानिस्तान लौट पड़े और भारत के रास्ते से बहुत ही शीघ्र अफ़गानिस्तान पहुँचे। नादिर शाह बहुत दिनों तक भारत में रह चुके थे, उन्होंने भारत के प्रसिद्ध नगरों का खूब भ्रमण किया था। उन्हें अधिकांश शिक्षा भारत ही में मिली थी। पहिले वे काबुल जाकर अमीर की फौज के साधारण सिपाही हो गए, और अपनी योग्यता के बल पर वे एक साधारण सेनापति हो गए। बादशाह अमानुल्ला ने नादिरशाह को अन्तिम उन्नति तक

पहुँचा था। नादिरशाह ने लौटते ही बहुमत अपने अधिकार में कर लिया। बच्चा-सक्का से दिलोजान से लड़े। बादशाह अमानुल्ला खाँ ने इस समय देश त्याग दिया था। अमानुल्ला चाहते तो वे अन्तिम-समय तक भिश्ती-बच्चे से लोहा ले सकते थे। लेकिन उन्होंने अपनी निरपराध जनता का खून बहाना उचित नहीं समझा। उन्होंने शीघ्र ही देश को छोड़-कर विदेशों की शरण ली। नादिरशाह ने बच्चा-सक्का को परास्त किया। वह पकड़ कर अपने साथियों सहित फाँसी के तख्ते पर टाँग दिया गया। इस क्रान्ति के दबाने में नादिरशाह ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। नादिरशाह अब अफगानिस्तान के बादशाह हुए।

लोगों को बहुत कम आशा थी, कि नादिरशाह गद्दी पर बैठेंगे ? राजनैतिक क्षेत्रों में यह चर्चा शुरू हो गई थी, कि अमानुल्ला खाँ फिर से गद्दी पर बैठेंगे। तमाम देशों में अफगानिस्तान-दिवस मनाया गया, और बादशाह अमा-नुल्ला खाँ के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। भारत के कोने कोने में अमानुल्ला खाँ के प्रति हार्दिक शुभ कामनाएँ प्रकट की गईं। एक बार अफगानी-जनता फिर से अमानुल्ला खाँ को बुलाने के लिये विचलित हो उठी। लेकिन ये भावनाएँ नादिरशाह ने दबा दीं। फिर भी ये भावनाएँ जितनी चाहिए उतनी नहीं दबाई गईं। नादिरशाह का एक रात को खून कर दिया गया।

भविष्य-अन्धकारमय

अफगानिस्तान का जितना उत्थान हुआ था; उतना ही पतन हो गया। नादिरशाह से भविष्य में उतनी ही आशाएँ

थीं, जितनी की अमानुल्ला खाँ चाहते थे। लेकिन नादिरशाह ने जिस स्वार्थमय नीति का अवलम्बन किया; उसका शीघ्र ही उन्हें फल भोगना पड़ा। इस समय अफगानिस्तान का भविष्य अन्धकारमय है। राजनैतिक क्षेत्रों में उसके विकास-वाद की चर्चा ही नहीं होती। नादिरशाह के पुत्र इस समय देश के भाग्य-विधाता हैं। इनके चरित्र-चित्रण से अभी तो यह भलीभाँति प्रकट होता है; कि एक बार फिर अफगा-निस्तान में राजनैतिक जाग्रति होगी।

देश में विदेशियों को काफी तौर से स्थान दिया जा रहा है। अफगानी सेना को उचित परामर्श देने. संगठित करने के लिये तथा लड़ाई के साज-सामानों के बनाने के लिये, अधि-कांश, जर्मन लोग भरती किये गए हैं। अफगानिस्तान का भविष्य अभी अन्धकार के गर्भ में है।

भारत, अरब, अफगानिस्तान, फारस और तिब्बत की राज्यक्रान्तियाँ

१

संसार में जब से राजसत्ता का जन्म हुआ है, तभी से राज्यक्रान्तियों का भी जन्म हुआ। सभी राष्ट्रों ने राज्यक्रान्तियाँ

को जन्म दिया। बीसवीं सदी में और विशेषतः यूरोपीय महायुद्ध के बाद राज्यक्रान्तियों को संसार में विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इन राज्यक्रान्तियों में सर्वश्रेष्ठ नर-पुंगवों को अपना बलिदान चढ़ाना पड़ा। एकाङ्गी-सत्ता और स्वेच्छाचारिता को नष्ट करने के लिये क्रान्तियाँ स्वयं जन्म लेती हैं। जहाँ स्वार्थ की सेना अपने दलबल से दूसरों की रोटी छीनने दौड़ती है, वहीं पर क्रान्ति जन्म लेकर स्वार्थियों की रक्त-पिपासा को शान्त कर देती है। अँग्रेजों की स्वार्थनीति ने संसार को अपने काबू में करना चाहा। परन्तु यूरोप में वह जर्मनी-फ्रांस और रूस की शक्ति के आगे पैर न फैला सका। इसलिये उसने एशिया पर अपना फौलादी पंजा फेंका। अरब-अफगानिस्तान, फारस और चीन में उसने एक साथ जाल फेंके। सन् १९०८ से लेकर सन् १९१६ तक उसने चीन में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करलीं। लेकिन सन् १९१२ ई० में चीन में भयंकर विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिससे चीन में राष्ट्रीय सरकार कायम हो गई। चिनियों ने अपनी भयंकर भूल को महसूस कर अँग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को फौरन रोक दिया।

इधर अफगानिस्तान में अमानुल्ला खाँ, फारस में रजाखाँ और अरब में इब्नसऊद के विरुद्ध राज्यक्रान्तियाँ हो उठीं। अफगानिस्तान, फारस और अरब ,एशिया के स्वतन्त्र राष्ट्र हैं। तीनों राष्ट्रों के महापुरुषों के जीवन स्वतन्त्र और आदर्शमय हैं। ,तीनों देशों की सीमाएँ अँग्रेजी-सरकार की सीमा से मिली हुई हैं। तीनों मुसलिम राष्ट्रों ने एक स्वर से अपने राज्यों की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकता में हस्तक्षेप करने से अँग्रेजों को बिलकुल रोक दिया।

अँग्रेज-सरकार और अफगानिस्तान

जब से रूसियों ने मध्यएशिया में कदम रक्खा, तभी से अँग्रेजों को रूस की तरफ से भयंकर शंकाएँ होने लगीं और बिना अफगानिस्तान को अपने कब्जे में किए यह शंका कभी भी दूर नहीं की जा सक्ती थी। अतः अँग्रेज अफगानिस्तान को अपने आधीन करने की फिक्र में जमीन आसमान एक कर रहे थे। उन्हें भय था कि रूस सहज ही में अफगानिस्तान को अपना दोस्त बनाकर वजीरिस्तान के रास्ते पंजाब की सीमाओं पर आ सक्ता है। इसलिये उन्होंने बड़ी भारी फौजों के साथ सन् १८३९ से सन् १८९० तक चार बार अफगानिस्तान पर हमला किया। किन्तु चारों बार पराजित होकर वापस लौटना पड़ा। एक बार खैबर के दर्रे में तमाम अँग्रेजी फौज काटकर फेंक दी गई थी।

अमीर अब्दुल रहमान खाँ और हबीबुल्ला खाँ

अफगानिस्तान के अमीर अब्दुल रहमान खाँ को अँग्रेजों ने बहुत तरह से अपने पक्ष में मिलाने की कोशिश की, लेकिन वे बड़े ही अग्रसोची और समझदार व्यक्ति थे, उनके आगे अँग्रेजों की एक भी कुटिलनीति नहीं चली! अमीर अब्दुल रहमान के बाद अमीर हबीबुल्ला खाँ अफगानिस्तान के अमीर हुए। हबीबुल्ला खाँ अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे, और वे अपने राज्य में नवीन-सुधार धीरे-धीरे कर रहे थे। हबीबुल्लाखाँ यद्यपि अंग्रेजों के दोस्त जरूर थे लेकिन वे उनकी नीति के गुलाम नहीं थे। जब-जब अंग्रेजों ने उन्हें नवीन सुधारों के लिये उकसाया तभी उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेज

राजनीतिज्ञ यह अच्छी तरह जानते थे कि अफगानिस्तान में विद्रोह नवीन सुधारों पर ही हो सक्ता है। अफगानिस्तान की जनता प्राचीन मुसलिम-शासन प्रणाली में ज़रा भी परिवर्तन नहीं करना चाहती थी। कुरान-शरीफ में दी हुई हिदायतों के अनुसार ही राज्य के समस्त कार्य संचालित होते थे। राज्य के समस्त कानून मजहब से सम्बन्ध रखते थे। ऐसी दशा में उनके उलटने या परिवर्तन करने से प्रजा का विद्रोही हो जाना स्वाभाविक था। अंग्रेजी सरकार इसी मौके की ताक में थी कि जैसे ही विद्रोह खड़ा हो, हम पंच बनकर पहुँच जावें, और नवीन संधि करके अफगानिस्तान को काबू में कर लें, लेकिन इस बात का उन्हें अवसर ही नहीं मिला।

इसी समय अफगानी सीमा पर रूसी रेलें बना रहे थे। अंग्रेज सरकार इससे और घबड़ा गई। उसने शीघ्र ही एक मिशन अफगानिस्तान भेजकर अपना दाव लगाना चाहा। अमीर ने मिशन को साफ उत्तर दे दिया कि हमारी राजनीति में तुम बाधा नहीं दे सक्ते। सन् १९१२ के दिल्ली दरबार में अमीर को निमंत्रण दिया गया जिसे अमीर ने स्वीकार भी कर लिया। फलतः इस मिशन से एक छोटीसी संधि कर ली जिससे अंग्रेज और रूसी दोनों संतुष्ट हो गए। रूसियों को व्यापार करने का सुभीता मिल गया और अंग्रेज बाहरी हमलों से बेफिकर हो गए। इस संधि से अंग्रेजों का दबदबा अफगानिस्तान में हो गया।

उधर जर्मन-नरेश कैसर विलियम इस राजनीति का अच्छी तरह अध्ययन कर रहा था। अंग्रेजों का इस तरह बढ़ना उसकी आँखों में खटकने लगा था। क्योंकि फारस और मोसोपटामिया पर भी अंग्रेजों ने अपना प्रभुत्व जमा

लिया था। इस दबदबे को रोकने के लिये एक षड्यंत्र रचा गया और इसी षड्यंत्र द्वारा हबीबुल्ला खाँ की हत्या कर डाली गई। अमानुल्ला खाँ और नादिरशाह भी इसी नीति के शिकार हुए।

इसी तरह अरब और फारस का भी विद्रोह था। अरब और फारस में भी अंग्रेज धीरे-धीरे अपनी शक्तियाँ बढ़ा रहे थे। अरब में तो आज भी अंग्रेजों की नीति के विरुद्ध बग़ावत का झंडा खड़ा है। अरब को राष्ट्रीय जीवन प्रदान करने वाले इब्नसऊद का नाम बड़े गौरव से लिया जा सक्ता है। इब्नसऊद ने अंग्रेजों की सत्ता मिटाने के लिये, तथा अरब की स्वतंत्रता के लिये, अमानुल्ला की तरह अंग्रेजीप्रलोभनों को स्वीकार नहीं किया। गिलबर्ट-क्लेटन कान्फ्रेंस में इब्नसऊद ने समस्त अंग्रेजी शर्तों को अस्वीकार कर दिया। अंग्रेजों को इससे हताश होकर अरब को स्वतंत्रता देनी पड़ी। लेकिन बहुत ही शीघ्र ईराक की सीमा की वहाबी-जातियों ने इब्नसऊद के खिलाफ विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इब्नसऊद जैसे ही उस विद्रोह को दबाने के लिये गए वैसे ही जद्दा के पास भारी बलवा हो गया। फारस के नेता रजा खाँ ने भी फारस में अंग्रेजों की नीति को कुचल दिया। लेकिन फारस की सीमा पर खुर्दिस्तान के पास विद्रोह खड़ा कर दिया गया। परन्तु शीघ्र ही दबा दिया गया।

इतिहास के पन्ने उलटने से ज्ञात होता है कि अफगानिस्तान, फारस और अरब के विद्रोह सिर्फ अंग्रेजों की नाराजगी के नतीजे ही थे। इतिहासकार और राजनीतिज्ञों ने तो यहाँ तक पुष्टि कर डाली है, कि ये विद्रोह ब्रिटिश-एजेन्टों और षड्यंत्रों द्वारा किए गए थे।

तिब्बत का विद्रोह

अब एशिया में सिर्फ नैपाल-भूटान और तिब्बत ही ऐसे देश रह जाते हैं, जहाँ अंग्रेजी हुकूमत नहीं है। लेकिन किसी तरह से नेपाल में अंग्रेजी रेजीडेण्ड रहने लगा। हजारों गोरखे अंग्रेजी सेनाओं में भरती होकर भारत आने लगे। भूटान को अंग्रेज सरकार ने कुछ सिक्के देकर अपनी ओर मिला लिया। भूटान का कुछ अंश बंगाल में मिला लिया गया। सन् १९१० ईस्वी में भूटान ने अपने परराष्ट्रीय विभाग को अंग्रेजों को सौंप दिया। अब तिब्बत को लीजिए। सन् १९०० तक तिब्बत में न किसी को जाने की हिम्मत ही थी, न वहाँ की राजनीतिक परिस्थित से ही कोई परिचित था। तिब्बती लोग अपने देश में किसी का आना पसंद नहीं करते थे। सन् १९०० में तिब्बत के लामा ने रूस के जार के पास मित्रता का संदेश भेजा, जिससे अंग्रेज चौकन्ने हो गए। चीन भी इस रूसी मित्रता को संदेह की दृष्टि से देख रहा था। चीन और ब्रिटेन दोनों को भय था कि रूसी तिब्बत के मार्ग से इस ओर न आजावें। अन्त में दोनों देशों के परामर्श से यह तय किया गया, कि तिब्बती सीमा पर एक अंग्रेज कमिश्नर भेजकर इस बात का ठीक-ठीक पता लगाया जावे। सन् १९०३ में कर्नल यंग हसबेन्ड तिब्बत भेजे गए। मि० यंग ने खंयाजंग स्थान पर तिब्बती-प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया, लेकिन कई बार बुलाने पर भी तिब्बती-प्रतिनिधि नहीं आए। मि० यंग इस बात पर बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने तिब्बत पर आक्रमण करना चाहा और सेनाओं के आने जाने के लिये उन्होंने सड़कें बनवानी भी आरम्भ कर दीं। तिब्बती अशिक्षित और जंगली थे, उनके पास न तो

लड़ाई का सामान था और न हथियार। तिसपर भी वे अंग्रेजों से बिगड़ उठे। मि० यंग के सिपाहियों से खासी मुठभेड़ हुई। इस मुठभेड़ में ६०० तिब्बती मारे गए और २०० गिरफ्तार कर लिये गए। अंग्रेजों के सिर्फ ३१ के करीब सैनिक मारे गए। दलाईलामा भागकर मंगोलिया जा पहुँचा। इसके बाद एक संधिपत्र तैयार किया गया, जिसके अनुसार अंग्रेजों को व्यापार के लिये राजनीतिक-सुभीते मिल गए। इस छोटे से युद्ध का ६५ लाख रुपया भी हरजाने के तौर पर तिब्बत को देना पड़ा। रुपयों के बदले में चिम्बरी की तराई दखल कर ली गई। इस तरह एशिया की समस्त भूमि पर जितने भी विद्रोह खड़े किये गए वे सभी अंग्रेजों की कुटिल-नीति के परिणाम थे।

अंग्रेज सरकार पर यह तुहमत लगाई जा सकती है कि उसने अपने स्वार्थ के लिये, उससे जितने भी अन्याय बन पड़े, किये। ब्रिटेन की यह मंशा थी कि एशिया महाद्वीप में हमारा पूर्णरूप से औपनिवेशिक-स्वराज्य स्थापित हो जाये और जितने भी स्वतन्त्र राष्ट्र हों वे हमारी अधीनता स्वीकार कर लें। अंग्रेजों से एशिया की एक भी इंच जमीन नहीं बची, जहाँ इन्होंने अपना फौलादी पंजा न फेंका हो। चीन सरीखे विशाल राष्ट्र को अफिमची बनाने वाले ब्रिटिश व्यापारी ही हैं। लेकिन चीन अफीम की चुस्की लेता हुआ भी ब्रिटिश-चंगुल से बचता रहा। चीन को हड़पने के लिये, जर्मनी, अमेरिका और फ्रांस ने भी अपनी-अपनी बस्तियाँ वहाँ कायम कीं। लेकिन अन्य राष्ट्रों ने इतना पैर नहीं फैलाया, जितना ब्रिटेन ने।

भारत में आकर अंग्रेजों ने क्या किया। उसने भारत के

नैतिक जीवन को गुलाम बनाने वाले कारखाने खोले। स्कूल और कालेज गुलामों के मशीन बने। कलाकौशल को नष्ट करके भारत के समस्त व्यापारिक अधिकार नष्ट कर दिये गए। अंग्रेजों ने भारत की भलाई के लिये रेल-तार और डाक इत्यादि का प्रबन्ध किया। लेकिन पीछे यह मालूम हुआ कि ये सब अपने आराम के लिये तथा हजारों मील बैठे रहकर अपनी अखंड हुकूमत चलाने के लिये ही हैं। रेलों से भारत का व्यापार नष्ट कर दिया गया। रेलों से ब्रिटिश-फौजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रता से पहुँचने में अधिक सहायता मिली। भारत के हजारों नवजवानों को फौजी वर्दियाँ पहना कर अपने ही देशवालों पर गोलियाँ चलाने के लिये मजबूर किया। हतभाग्य कमजोर जाति अपने ही देश-वासियों का शिकार होने लगी। भारत के सर्वश्रेष्ठ सम्प्रदायों को जागीर और धनी व्यक्तियों को लम्बे-लम्बे पद देकर अपनी ओर मिला लिया।

सन् १८५७ ई० में हिन्दुस्तानियों ने यह अनुभव किया कि यह मायाजाल सिर्फ भारत को गुलाम बनाने के लिये ही है। यह ज्ञान पूर्णरूप से होने पर भारतीयों ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इसके पूर्व, १०० वर्ष की भयंकर लड़ाइयों में भारत अपनी समस्त शक्ति खो बैठा था। उसके पास न तो पैसा था और न काफी सैनिक। उत्तर भारत में पंजाब और दक्षिण के मरहठों पर अंग्रेजी हुकूमत का काफी प्रभाव था। सिर्फ मध्य-भारत, संयुक्त प्रान्त में ही राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के दीवाने अपने देश को अंग्रेजों से वापस छीनने के लिये घोर प्रयत्न में लगे थे। भारत का यह अन्तिम विद्रोह था। विद्रोह की आग इतनी जोरों

से भड़की, कि कुछ हिन्दुस्तानी पल्टनों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। लेकिन अंग्रेजी संगठित सेना के आगे वे दबा दिये गए।

वीर लक्ष्मीबाई झाँसीवाली

जब-जब संसार के विद्रोह लिखे जायगें, तब तब उन विद्रोहों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का उल्लेख अवश्य किया जावेगा। संसार के विद्रोही नेताओं में रानी लक्ष्मीबाई का नाम विशेष उल्लेखनीय ही नहीं वरन् वह स्वतन्त्रता की देवी की तरह पूजनीय मानी गई हैं। रानी ने ब्रिटिश साम्राज्य के सूर्य को अस्त करने के लिये अपनी असाधारण वीरता दिखलाई। अपने मुट्ठी भर सैनिकों के सहारे इस भारत भूमि पर अंग्रेजों का रहना दुश्वार कर दिया। परन्तु विधाता को यह मंजूर न था। रानी अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सकी और अन्त में वे वीर गति को प्राप्त हो गईं। रानी के मरते ही अंग्रेजी सत्ता पूर्ण रूप से भारत में नंगा नाच नाचने लगी। ❀ इसके बाद जो भी क्रान्तियाँ हुईं वे भारत की राज्यक्रान्तियों में पाठक पढ़ सकेंगे।

भारत की इस क्रान्ति के दब जाने से समस्त एशिया में अंग्रेजों का प्रभुत्व जम गया। भारत एशिया का ब्रिटिश साम्राज्य का किला ही नहीं बल्कि मालगोदाम बन गया। समस्त एशिया की गुलामी का कारण ही सन् ५७ का विद्रोह

❀ इसके बाद की क्रान्ति पढ़ने के लिये हमारे यहाँ से प्रकाशित 'भारत सन् ५७ के बाद' मँगाकर पढ़िये। इसमें क्रान्ति का इतिहास, शहीदों के जीवन-चरित्र सहित दिया गया है। सचित्र पुस्तक का मूल्य ४)।

था। अगर सन् ५७ का विद्रोह पूर्णरूप से सफल हो जाता तो, एशिया खंड में आज अंग्रेजों की सत्ता स्थापित न हो पाती। आज हम अरबों को गोलियों का शिकार होना नहीं देख पाते। जापान का फौलादी पंजा, चीन पर न पड़ता और मोसोपटामिया, बसरा और नैपाल की तराई के नीचे यूनीयन जैक झंडे न उड़ते।

संसार के सामने इस समय जो समस्याएँ उपस्थित हैं उनमें निम्न-लिखित समस्याएँ मुख्य हैं।

भारत की स्वतन्त्रता, अरब की आजादी और एशियाई राष्ट्र-संघ की स्थापना।

एशियाई राष्ट्र-संघ की स्थापना तब तक नहीं हो सकती, जब तक एशिया के गुलाम राष्ट्र आजाद नहीं हो जाते। सबसे जबरदस्त प्रश्न तो भारत का है। भारत को स्वतन्त्रता मिलते ही एशिया की समस्त राजनीतिक समस्याएँ सहज ही में हल हो जावेंगी।



वार्साई की सन्धि के बाद

नेपोलियन का पतन हो चुका था। वर्साई की प्रबल संधि के बाद यूरोप का इतिहास दो भागों में विभक्त होता है—

"राज्यक्रान्ति और संघर्ष"। वियना की विशाल राष्ट्र-सभा में, एकतन्त्रीय शासन के साथ-साथ जनसत्तात्मक शासन-विधान का एक सूत्र तैयार किया गया था। लेकिन ये सब चमकीले उदाहरण-मात्र थे। इसके १५ वर्ष बाद ही जनसत्तात्मक-राष्ट्रीय-सिद्धान्तों का जन्म हुआ और सन् १९१४ में प्रकाश में आया। सन् १९१४ का भयंकर यूरोपीय युद्ध इस बात की घोषणा के लिये ही था, कि संकुचित राष्ट्रीयता संसार में नहीं रह सकती।

जब समस्त राष्ट्रों के एकतन्त्रीय शासन-विधान ने अपने को शक्तिशाली बना लिया तो उन्होंने राष्ट्रवाद को साम्राज्य की तृप्ति के लिये एक साधन बनाया। पूँजीपतियों का जोर बढ़ने लगा। वे किसी भी देश में जाकर, वहाँ व्यापार करने के निमित्त, हर प्रकार के सुभीतों के लिये फौज और कानूनों की शरण लेते थे। जब उस देश में इनके व्यापार को धक्का पहुँचता था, तब ये राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने लगे। राष्ट्र के अधिकारियों को अपने-अपने व्यवसाइयों की रक्षा के लिये किलेबन्दी करनी पड़ी। व्यापारियों की रक्षा करना राष्ट्रीय-गौरव माना जाने लगा। किसी भी देश में किसी देश के व्यापारियों की पराजय से उस देश का महान् अपमान समझा जाने लगा। ग्रेट-ब्रिटेन संयुक्त-राष्ट्र और जापान ने इसी नीति का अवलम्बन किया। अपनी साम्राज्य-लोलुपता को शान्त करने के लिये अनेकों चेष्टाएँ की गईं। ज्यों-ज्यों व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता बढ़ती गई त्यों-ज्यों जन-सत्तात्मक विचार लोगों में अङ्कुरित होते गए। ज्यों ही निर्बल राष्ट्रों ने अपनी रक्षा के लिये आवाज उठाई त्यों ही बलवान शक्तियों ने उन्हें धर-दबाया। इतना ही नहीं निर्बल राष्ट्रों को

अपने व्यापार करने की स्वच्छन्दता भी छीन ली गई। इन स्वेच्छाचारी राष्ट्रों की ताकत इतनी बढ़ गई कि वे संसार को अपने सामने तुच्छ समझने लगे। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये नियम-उपनियम, विचार और व्यवस्थाएँ बालाए-ताक रख दी जाती हैं।

जिसकी लाठी उसकी भैंस

की कहावत सन् १४ से अधिक प्रचलित हुई। किसी भी राष्ट्र को इसकी चिन्ता नहीं थी कि उसकी नीति से दूसरे देशों को हानि पहुँचती है अथवा लाभ। उसे तो केवल अपने स्वार्थ ही से मतलब था। १९ वीं शताब्दि के इस अन्तर्राष्ट्रीय-नीति का परिणाम ही सन् १९१४ का महायुद्ध था। इस भीषण युद्ध की समाप्ति के बाद लोगों ने राष्ट्रवाद के भयंकर परिणाम का अनुभव किया। महायुद्ध बन्द हो चुका था। जर्मनी अपने किये हुए फलों को भोगने लगा। मित्र राष्ट्रों ने हजारों सैनिकों और करोड़ों रुपयों का स्वाहा कर, दम लिया। विश्वशान्ति के उपासकों ने परिस्थिति के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि युद्ध अब सदा के लिये बन्द हो गया। किन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल निकली। युद्ध बन्द होते ही, तमाम राष्ट्र युद्ध की जोरदार तैयारियाँ करने पर झुक पड़े। जन-सत्तात्मक-स्वराज्य की भावनाएँ एक ओर पड़ी रहीं और डिक्टेटर-शिप का विधान तैयार किया गया। प्रत्येक राष्ट्र जनसत्ता की परवाह न करता हुआ स्वार्थपरता में लिप्त हो गया।

जर्मनी, चीन, जापान, फ्रांस आदि ने जोरदार सैनिक तैयारियाँ शुरू कर दीं। अठारहवीं सदी के विचार आज

बीसवीं सदी में उपयोग किए जा रहे हैं। १८ वीं सदी में न रेलें थी, न तार और न हवाई जहाज। एक देश को दूसरे देश का रत्ती भर भी भय न था। लेकिन बीसवीं सदी के इस वैज्ञानिक युग ने एक देश को दूसरे देश के प्रति सशंकित कर दिया है। आज कोई भी देश अपने देश की सीमा नियत नहीं कर सकता। आज कोई भी देश अपनी इच्छानुसार सेनाएँ नहीं रख सकता।

करेंसी, सीमाएँ, टेरिफ, संधियाँ ये चारों बातें अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सभाओं से पूछकर ही तय हो सक्ती हैं। किसी भी देश को अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता निर्धारित करने का अधिकार नहीं रहा। इन सभी बातों के निर्णय के लिये राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई। राष्ट्र-संघ का एकमात्र उद्देश था, कि संसार के सभी राष्ट्रों को समानता का रूप देकर उसके घरू और बाहरी झगड़ों का न्यायपूर्वक फैसला करे। इसका दूसरा उद्देश था, राष्ट्रवाद को नष्ट करके विश्वशांति का प्रचार करे। संसार के सभी राष्ट्रों ने विश्व-शांति के अनेकों राग अलापे। परतु पारस्परिक-संदेहों के कारण राष्ट्र-संघ सफल नहीं हो सका। संघ राष्ट्रों के ऊपर अपना प्रभाव डालने में प्रायः असमर्थ रहा। जापान ने संघ के विचारों को एक स्वांग कहकर ठुकरा दिया। जर्मनी ने भी राष्ट्रसंघ के नियमों को नहीं माना। अतएव निर्बल राष्ट्रों को भी इस संघ से कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा।

संघ न तो निशस्त्रीकरण समस्या को सुलझा सका और न वह राष्ट्रों की स्वच्छन्दता ही मिटा सका। समस्त राष्ट्रों के देश बारूदखानों से भरे पड़े थे। विगत युद्ध के बाद जर्मनी ही एक ऐसा प्रदेश था, जिसकी तमाम हस्ती बरबाद हो चुकी

था। जर्मनी की सधियों में एक बात यह भी तय हुई थी कि तमाम राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति कम कर देंगे। लीग शक्तिशाली राष्ट्रों से इस संधि को पूरा न करवा सकी। जर्मनी यद्यपि धन और जन से कुचला जा चुका था, फिर भी उसका हृदय ज्यों का त्यों बना हुआ था। जर्मनी के अधिकांश नवयुवक अपने देश की इस अधोगति को नहीं देख सक्ते थे। उन्हें आवश्यक्ता थी एक अच्छे लीडर की। उन्होंने अपनी आत्मशक्ति की प्रेरणा से हिटलर को पा लिया। हिटलर के मैदान में आते ही संसार फिर एकबार चौंक उठा। युद्ध की आग शीघ्र भड़केगी, यह शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा। अगर युद्ध हुआ तो इसका उत्तरदायित्व जर्मनी पर न होकर उन राष्ट्रों पर होगा, जिन्होंने संधि के अनुसार अपनी सैनिक-शक्ति को कम नहीं किया। निशस्त्री-करण आंन्दोलन समस्त बलवान राष्ट्रों के प्रति था। लेकिन निशस्त्री-करण कान्फ्रेंस ने, सिर्फ जर्मनी के प्रति ही ऐसा कड़ा रुख अख्तियार किया था। निशस्त्री-करण आंदोलन के पक्ष में सभी राष्ट्र थे, लेकिन वे उसकी शर्तें स्वीकार करने और व्यावहारिक रूप में लाने का दावा नहीं करते थे।

इसके दो कारण थे। पहिले तो साम्राज्यवाद की पिपासा राष्ट्रों के हृदयों में ज्यों की त्यों थी। दूसरा कारण यह था, कि एक राष्ट्र दूसरे पर विश्वास नहीं करता था। साम्राज्यपिपासा ने जन-सत्तावाद आंदोलन को दूरकर डिक्टेटरशिप को आदर्शवाद का स्वरूप माना। अपनी स्वेच्छा को जारी रखने के लिये तथा साम्राज्य को चिरस्थायी रखने के लिये डिक्टेटर-शिप की योजना को उन्होंने प्रजातन्त्रवाद का रूप देकर अपनाया। उनका विश्वास है कि जनसत्तात्मक-सरकार

बहुत ही निर्बल होती है। इसका कारण एक और बतलाया जाता है, कि जन-सत्तात्मक राज्य की बागडोर कई पार्टियों के हाथ में रहने के कारण शासन-विधान ठीक-ठीक नहीं बनाये जा सकते। साथ ही देश पार्टीबंदी के दल-दल में फँस जाता है, जिससे वह जोरदार नीति का अनुसरण नहीं कर सक्ता। इन धारणाओं का समर्थन रूस-जर्मनी-इटली आदि ने जोरदार शब्दों में किया। वे समझते हैं कि प्रजातन्त्र शासन-विधान से डिक्टेटर-शिप की शाही हुकूमत सबसे अच्छी है। उदाहरणार्थ डिक्टेटर साधारण मनुष्य ही होते हैं, उच्च राजवंशीय नहीं यद्यपि इन डिक्टेटरों ने आशातीत उन्नति कर लोकमत को अपनी तरफ खींचने की बड़ी तत्परता दिखाई है, फिर भी इनकी कड़ी हुकूमत, स्वेच्छाचारी नृशंस राजाओं से कहीं अधिक अच्छी है। इस समय संसार में चार डिक्टेटरों की तूती बोल रही है। रूसमें—स्टालिन की, जर्मनी में—हिटलर की, इटली में—मुसोलिनी की और पोर्तगाल में—कारमोना की।

हिटलर और मुसोलिनी ने जर्मनी और इटली में युगांतर आरम्भ कर किया। डिक्टेटरों की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर जनता प्रजातंत्र को एक घृणित-विधान समझने लगी। अमेरिका, इंगलैण्ड और फ्रांस में भी लोग कहने लगे कि प्रजातंत्रवाद असफल हो गया। जनसत्ता-पवित्र और शांत व्यक्तियों की उपेक्षा करती है। प्रोफेसर हर्नशा ने ठीक कहा है—कि श्रेष्ठ व्यक्ति इस जनसत्तावाद में स्थान नहीं पा सक्ते।

लोगों के मन और विचार जनसत्तात्मक प्रणाली से बदल रहे हैं। किन्तु एशिया खंड को यह परिवर्तन पसंद

नहीं। डिक्टेटर-शिप में एक ही सिद्धांत होता है, जैसे कि नाजी सिद्धांत ने यहूदियों को दुनियाँ से उठा देने के लिये सभी प्रकार के प्रयत्न किये। जनसत्तावाद प्रणाली में यहूदियों पर इतना जुल्म नहीं होता। यहूदी जर्मनी के नागरिक थे। उन्होंने देश-व्यापी युद्ध में जर्मनी की महान् सेवा की थी। इस अपूर्व देश-भक्ति की सौगात में यहूदियों को मिला—नर्वासन, जेल यातनाएँ, नजरबन्दी और संपत्ति-हरण का कानून। अगर जर्मनी में जनसत्तात्मक प्रणाली होती, तो ये एकतंत्रीय सिद्धांत देश की छाती पर न लादे जाते। हिटलर और मुसोलिनी जो कहते हैं कर गुजरते हैं, और इसी को प्रजातंत्रीय विधान बताया जाता है।

हिटलर की नादिरशाही और यहूदियों पर होने वाले अत्याचारों की काफी समालोचना हो चुकी है। दोषयुक्त होने पर भी हमें प्रजातंत्रवाद के विधान को सर्वोत्तम स्वीकार करना पड़ेगा। पहिले समय में राज्य-शासन की बागडोर एक ही व्यक्ति के हाथ में रहती थी। वह व्यक्ति राजा कहलाकर ईश्वर का एक अंश माना जाता था। उसकी वाणी ईश्वरीय वाणी होती थी। इस अंधविश्वास में जनता सैकड़ों वर्ष पर्यन्त पिसती जाती रही। राजा-महाराजाओं के चरणकमलों में गरीब जनता अपना सर्वस्व स्वाहा करती रही। लेकिन जब समय ने पल्टा खाया और अंधविश्वास में पड़ी हुई जनता जागी तो उसने प्रजातन्त्र की पुकार मचाकर सैकड़ों क्रांतियाँ आरम्भ कर दीं। सन् १६०१ से सन् १६३४ तक क्रांतियों का एक जमाना था। तमाम देशों ने जन-समूह को शासन की बागडोर सौंप दी। लेकिन अब फिर वह समय

आ रहा है जब कि जनता के हाथ से ये अधिकार छिनकर फिर एक हाथ में चले जायंगें।

भविष्य वाणी

इस विषय में राजनैतिक आचार्यों की कड़ी से कड़ी चेतावनियाँ भविष्यवाणी के रूप में निकल रही हैं। लोग डिक्टेटर-शिप के विरुद्ध बड़ी से बड़ी राज्य-क्रांतियों के होने की प्रतीक्षा में हैं और ऐसा हो जाना भी संभव है। जहाँ जनसमूह के विचारों की अवहेलना की जायगी—चीखें आवाजें और आहों को जब ठुकराया जायगा, तो क्रांति बड़े ही उग्ररूप में प्रकट हो उठेगी। यह मानना ही पड़ेगा कि सन् १९३९ से लेकर सन् १९५० के भीतर ही देश में अनेकों क्रांतियों का जन्म होना।



संसार के प्रजातन्त्र और तानाशाही राज्य-शासन

संसार की अपूर्व क्रान्तियों के बाद उसे प्रजातन्त्र और डिक्टेटरी शासन मिला। संसार में अब यह समस्या हल की जा रही है कि प्रजातन्त्रवाद शासन स्थापित किये जावें या डिक्टेटरवाद। यह विचार प्रत्येक देशवासी के मस्तिष्क में घूमा करता है। इटली, जर्मनी और टर्की ने प्रजातन्त्र के बाद

डिक्टेटरीशप की घोषणा की। चीन, स्पेन और फ्रांस ये तीनों भी प्रजातन्त्रवादी हैं।

इटली की तानाशाही

महायुद्ध के बाद इटली में प्रजातन्त्र की स्थापना होकर वह तानाशाही के रूप में बदल दी गई। इसके नेता हुए मुसोलिनी। इसके पहिले इटली में विक्टर एमानुएल का राज्य-शासन था। आज भी नाममात्र के लिये राजा का पद सुशोभित है। जिस समय विक्टर का राज्य-शासन इटली में था, उस समय इटली की आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं में महान् दुर्बलता थी। उसे बाहरी शत्रुओं से अपनी रक्षा करना भी कठिन ज्ञात होता था। उस समय इटली के हड़पने के लिये प्रबल शक्तियाँ अपनी नजर उस ओर बड़ी तीव्रता से दौड़ा रही थीं। इसी समय महायुद्ध छिड़ा। इटली ने मित्र-राष्ट्रों का साथ दिया। इसके उपलक्ष में उसे कुछ लूट खसोट की जमीनें दे दी गईं। फ्रांस और इंगलैण्ड ने बाकी सब हड़प लिया। सन् १९२५ ई० में मुसोलिनी इटली का भाग्य-विधाता बना और उसने इटली को एक उच्च कोटि का राष्ट्र बना दिया।

टर्की

महायुद्ध के पहिले टर्की का राज्य-शासन अधिक चिन्ताजनक था। टर्की के ऊपर अनेक राष्ट्रों की आँखें लगी हुई थीं। राष्ट्रीयता क्या है ? इसे टर्की जानता ही न था। संसार ने उसे राजनैतिक रोगी समझकर उसे मृतप्राय ही समझ लिया था। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और रूस उसकी अन्तिम

परिस्थिति को देख रहे थे कि कब टर्की अपना जीवन समाप्त करता है और कब हम उसका बटवारा करते हैं। तुर्की साम्राज्य को अस्त होने में अब देरी नहीं थी। प्रकृति ने शीघ्र ही कमाल-पाशा नाम के बहादुर सिपाही को जन्म देकर राष्ट्र को मौत मुँह से निकाल लिया। कमालपाशा के कमाल ने युरोप और एशिया में विलक्षण राजनैतिक जागृति पैदा कर दी। कमाल-पाशा तुर्की का तानाशाह था। उसकी मृत्यु से एशिया की जग-मगाती राष्ट्रीयता को महान् हानि पहुँची।

जर्मनी

महायुद्ध के पहिले जर्मनी एक प्रबल राष्ट्र था। विलियम कैसर ने उसे संसार से लोहा लेने की शक्ति प्रदान की थी। उसने अपनी शक्ति का परिचय संसार को देकर एक आश्चर्य-जनक सन्देह उत्पन्न कर दिया था कि "क्या जर्मनी संसार को जीत लेगा"—

महायुद्ध के बाद वह टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। मित्र राष्ट्रों ने उसे इतना निकम्मा और कमजोर बना दिया था कि उसे अपने हाथ पैर फैलाने को तिलमात्र भी स्थान नहीं था। उसके बाहरी उपनिवेश छीन कर आपस में बाँट लिये गये थे तथा युद्ध के हरजाने की करोड़ों पौंड रकम उसके ऊपर लाद दी गयी थी। पराजित देश के टुकड़े-टुकड़े कर उसे खा जाना ही प्रबल शक्तियों ने अपना एकमात्र कर्तव्य समझ लिया था। जर्मनी मौत के बिस्तर पर अन्तिम सांसें ले रहा था। इसी समय प्रकृति ने हिटलर को जन्म देकर जर्मनी को एक नवीन जिंदगी दी, जिससे एकबार संसार फिर थर्रा उठा है।

तानाशाही के राज्य-शासन

तानाशाहों के राज्य शासनों ने अपने अपने देशों को समुचित उन्नति के शिखर पर पहुँचकर संसार में आश्चर्य-जनक क्रान्तियों के सहारे एक बलिष्ठ राष्ट्र बना दिया है। जर्मनी-इटली और टर्की संसार में सबसे प्रबल राष्ट्रों में गिने जाते हैं। फिर भी तानाशाही में यह दोष देखा गया है, कि वे अपने स्वार्थ-मय जीवन के लिए निरंकुश शासन के हामी बनते जा रहे हैं। उन्होंने स्वार्थ-नीति को स्थान देकर निर्बल राष्ट्रों को कुचलना और सभ्यता के गुणों में से मानवता को बाहर फेंक कर कलंकमय-राष्ट्रीयता को जन्म दिया है। राजनीति-विशारद और इतिहासों के विशेषज्ञों का यह कहना ठीक ही है कि वह समय दूर नहीं है कि जार निकोलस और विलियम कैसर के प्रति जैसी भीषण राज्य-क्रान्तियाँ उठी थीं उसी तरह इन तानाशाहों के प्रति भी एक दिन उठ खड़ी हों।

प्रजातन्त्रवाद और क्रांतियाँ

चीन की प्रजातन्त्र

अब हम उन प्रजातन्त्रों पर विचार करते हैं, जिन प्रजा-तन्त्रों की पुकार संसार में समुद्री-लहरों की तरह लहलहा

रही हैं। सन् १६०८ ई०। में चीनी राज्य-क्रांति हुई। चीन का विशाल साम्राज्य इस महान् राज्य-क्रांति से डगमगा उठा। डाक्टर सनयाट सेन ने इस आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। चीनी-सम्राट इससे घबरा गए। १२ फरवरी सन् १६१२ को चीनी-सम्राट ने राज-पद त्यागकर प्रजातन्त्र की घोषणा की। प्रजातन्त्रीय शासन में चीन की अवस्था कुछ भी नहीं सुधरी। राजनैतिक-आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ और वह और भी निर्बल हो गया। महायुद्ध के बाद विदेशी राष्ट्रों ने उसे हड़पने के लिये अपने-अपने प्रयत्न किए, जिसमें अधिकांश रष्ट्र सफल भी हुए। सिवाय आंतरिक आजादी के बाहरी आजादी में वह गुलाम ही रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि जापान ने उसे अपना पहिला शिकार बनाया। जापानी फौजों ने चीन को हड़पने के लिये लोहा लिया। और अधिकांश भाग अपने आधीन कर लिया।

स्पेन

सन् १६२५ ई० में स्पेन में राज्यक्रांति हुई। सम्राट गद्दी से उतार दिए गए और प्रजातन्त्र की घोषणा की गई। इस प्रजातन्त्र से स्पेन बलवान राष्ट्र न बन सका। जनरल फ्रैंको ने प्रजातन्त्र के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। वर्तमान स्पेन नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। और शीघ्र ही वहाँ तानाशाही शासन स्थापित होगया।

फ्रांस की प्रजातन्त्र

फ्रांस में ८० वर्ष से प्रजातन्त्रीय शासन चलाया जा रहा

है। महायुद्ध के विजय के बाद फ्रांस संसार का एक शक्ति-शाली राष्ट्र समझा जाने लगा। यूरोप का नेतृत्व फ्रांस ने ग्रहण किया। संसार में उसका एक विशाल साम्राज्य स्थापित हो गया। इन प्रजातन्त्रीय राष्ट्रों ने तानाशाही शासनों के आगे अपना मस्तक झुका दिया। आज रूस-ब्रिटेन-फ्रांस आदि मिलकर भी इटली और जर्मनी का सामना नहीं कर सक्ते। फ्रांस की राजनैतिक स्थिति बिलकुल कमजोर हो गई है। प्रधान मंत्री इस स्थिति को सँभालने में पूरे असफल हो रहे हैं। म्यूनिक में जर्मनी ने जो धमकियाँ दीं, उनके आगे संसार की शक्तियों ने घुटने टेक दिए।

तानाशाही राष्ट्रों ने जो बल प्राप्त किया है, उससे वे संसार को चुनौती दे रहे हैं। जर्मनी ने फ्रांस को ट्यूनिस छोड़ने के लिये फिर अल्टिमेटम दिया है। इस तरह इस नवीन युग को संसार अभिवादन कर रहा है, इधर भारत भी अपने २० वर्षों की स्वराज्य की लड़ाई में विजय प्राप्त कर चुका है। ९ प्रांतों में अपना बहुमत कायम कर लिया है। कांग्रेस का विधान प्रजातन्त्रात्मक है। अगर भारत भी अपनी विजय में पूर्ण सफलीभूत हुआ तो उसे भी एक ऐसे महान् डिक्टेटर की आवश्यक्ता पड़ेगी, जो मुसोलिनी और हिटलर से कम न हो!—

रूस का सोवियट सागर

गत १५ वर्षों में रूस की सोवियट सरकार ने भी अपने देश की पंचवर्षीय योजना को भलीभाँति सफल बनाया। सोवियट ने रूस को एक ऐसे साँचे में ढाल दिया है, जो बराबर ७ वर्ष तक संसार का भरपूर मुकाबला कर सकता है।

रूस ने समस्त जनता को सेना का सिपाही बना डाला, जो समय पर एक झण्डे के नीचे लाखों नहीं बल्कि करोड़ों की तादाद में जमा की जा सक्ती है। आज रूसी स्त्रियों में स्वदेशाभिमान की मात्रा अन्य देशों से अधिक बढ़ी हुई है। क्रांति के समय एक रूसी स्त्री ने कहा थाः—

ब्रिटेन और अमेरिका की राजनैतिक-चालें

संसार में अमेरिका और ब्रिटेन ये दो शक्तिशाली राष्ट्र हैं। इनकी धन और शक्ति अन्तिम पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है। यही दो देश ऐसे हैं जो आपस की गहरी स्पर्धा से एक दूसरे को मात कर रहे हैं। वास्तव में इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों को आज वह शक्ति प्राप्त है, कि अगर वे चाहें तो संसार के सभी निर्बल राष्ट्रों को हड़प जा सकते हैं। गत महायुद्ध के पूर्व और उसके बाद सैकड़ों नाटक खेले गए। उन्हीं में से एक नाटक लीग आफ नेशन्स भी है। महायुद्ध के बाद संसार का ढांचा बदल गया। राजनैतिक-सामाजिक और धार्मिक सभी दिशाओं में भीषण परिवर्तन हुए। दुनियाँ एक नए रँग में रँगी जाने लगी। ज्यों-ज्यों सभ्यता और शान्ति का विकास हुआ; त्यों-त्यों-कूटनीति-पैंतरेबाजी-तनातनी-स्पर्द्धा आदि की वृद्धि होती गई। राजनैतिक गुत्थियां एक दूसरे से उलझने लगीं। महायुद्ध को समाप्त हुए अभी थोड़े ही वर्ष गुजरे हैं कि युद्ध के बादल फिर उमड़ने लगे। चारों ओर से युद्ध की आवाज आने लगी है। संसार के राजनैतिक क्षेत्रों में दिनों दिन यह चर्चा बढ़ती चली जाती है कि यदि युद्ध हुआ तो संसार दूसरे रूप में बदल जावेगा।

जर्मनी से युद्ध होना अनिवार्य था। उनकी बढ़ी हुई धन-

राशि, उसका अतुल वैभव और सैनिक-शक्ति के कारण ब्रिटेन बौखला उठा, और यही जर्मनी के नाश का कारण हुआ। यूरोपीय महायुद्ध सन् १९१४ में छिड़ा था, परन्तु उसके आचार-विचारों की रूप-रेखा सन् १९१० से ही प्रकट होने लगी थी। जिस तरह ब्रिटेन आजकल अमेरिका के साथ मिलकर संसार को निशस्त्रीकरण का झाँसा दे रहा है उसी तरह उसने सन् १९०४ और सन् १९०५ ई० में जर्मनी के साथ भी एक दाव खेला था। सन् १९११ ई० में जर्मनी और इंग्लैण्ड में काफी लिखा पढ़ी हुई। जहाजी ताकत और जल सेनाओं को सीमित करने के लिये एक प्रतिनिधि-दल बर्लिन भेजा गया। परन्तु उसका परिणाम जो कुछ हुआ वह सन् १९१४ का महाभयंकर युद्ध ही था।—

महायुद्ध के बाद—ब्रिटेन और अमेरिका का आयात और निर्यात

सन् १९१३ में

विश्व-व्यापार राशि, मिलियन डालरों में—

इंग्लैंड—२,५५६ १३'९

अमेरिका—२,४४८ १३'३

जर्मनी—२,४०३ १३'१

सन् १९२७ मे—

विश्व-व्यापार राशि, मिलियन डालरों में:—

ब्रिटेन—२,४४७ ११'३

अमेरिका—४,७५८ १५'६

जर्मनी—२,४२८ ८'०

जिस जर्मनी के हाथ में दुनियाँ के व्यापार का १३·१ फी सदी हिस्सा था, वही सन् १६२७ ई० में उसके हाथ सिर्फ फीसदी ८ वां हिस्सा रह गया। अमेरिका जो ब्रिटेन से पीछे था, सन् १६२७ में उसके अधिकार में संसार का १५ वां फीसदी व्यापार आ गया। ब्रिटेन जिसे अपनी नाविक शक्ति और व्यापारी जहाजों पर काफी भरोसा था, सन् १६३० ई० में ११·३ से कम व्यापार हाथ में रह गया। इसका मुख्य कारण चीन और भारत का स्वदेशी आंदोलन ही है।

ब्रिटेन संसार का सबसे शक्तिशाली और अपूर्व धनराशि वाला राष्ट्र माना जाता है, किन्तु अमेरिका की बढ़ती हुई लक्ष्मी की कला के आगे ब्रिटेन एक दिवालिया सा प्रतीत होता है। यद्यपि ब्रिटेन के औपनिवेशिक-साम्राज्य विशाल और विस्तृत हैं, लेकिन धन में अमेरिका ही संसार के राष्ट्रों के आगे है। दुनियाँ की आँखों में अब वह सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रों की गिनती में आ गया है। महायुद्ध के पहिले अमेरिका की राजनैतिक और माली हालत दोनों गिरी हुई थीं। उस समय वह स्वयं यूरोप का ऋणी था। वह सिर्फ अन्न और कच्चे माल का ही व्यापारी था। आज २० वर्षों में वह उन्नति की दौड़ में सबसे आगे है। आज वह आर्थिक, राजनैतिक और सैनिक बल का स्वामी है। नाविक बल का धनी है। उसने संसार को ब्रिटेन की तरह अपने लोहे के शिकंजों में नहीं जकड़ा—दुनियाँ को झाँसेपट्टी में नहीं फाँसा। साथ ही न उसके पास इतने उपनिवेश ही हैं, जिनके द्वारा खजाने भरे जायँ। अमेरिका ने जो भी उपार्जन किया है, वह अपनी व्यापारिक योजनाओं के बल पर ही।

यह सब बातें अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक गुत्थियाँ समझने

वाले और राजनैतिक समस्याओं की पूर्ति करनेवाले ही समझ सकेंगे। जैसे-जैसे आप इन शतरंज की चालों को याद करोगे वैसे ही इनकी भीषणता आपसे आप प्रकट होती चली जायगी। संसार के नकशे के दोनों गोलाकार खंडों की परिस्थियों में जो-जो क्रांतियाँ हुईं उनके अनेक कारण कहे जा सक्ते हैं। लेकिन संसार को अशांति की ओर ले जाने वालों में विशेपकर इन साम्राज्यवादी राष्ट्रोंका विशेप हाथ रहा है, और अब भी है। आज इन्हीं के दुष्कर्मों से संसार में बेकारी-बेचैनी और मन्दी फैली हुई है। इन्हीं साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने राजनीति को लूट खसोट की वृत्ति बनाकर उसे शांति और सभ्यता का एक नवीन रूप दिया है—

ब्रिटिश-उपनिवेश

लड़ाई के पहिले ब्रिटिश उपनिवेशों में अमेरिकन दूतावास नहीं थे। लड़ाई के बाद सभी उपनिवेशों में उसने अपने दूतावास स्थापित कर लिए। कनाडा और आस्ट्रेलिया, ब्रिटिश-साम्राज्य के अङ्ग हैं। परन्तु लड़ाई के बाद वे भी पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षपाती हो गए। सन् १९२३ से वहाँ भी एक आंदोलन की लहर जाग उठी। अफ्रिका भी अपनी हीनावस्था को धीरे-धीरे दूर कर रहा है। ब्रिटिश उपनिवेश अपनी आंतरिक राष्ट्रीय-भावनाओं के साथ आगे बढ़ रहे हैं। कनाडा और आस्ट्रेलिया दोनों ही अमेरिकन-राजनीति से प्रभावित हैं। राजनीतिज्ञ शास्त्रियों का मत है कि अगर ब्रिटेन और अमेरिका में युद्ध छिड़ा तो ये दोनों देश ब्रिटेन का साथ नहीं

देंगे। ये देश भले ही किसी पक्ष में न होकर निरपेक्ष भाव से बैठे रहेंगे परन्तु ब्रिटेन का साथ देना उन्हें असह्य होगा।

सामुद्रिक तनातनी

ब्रिटेन और अमेरिका की सामुद्रिक और अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास के समझने में और इतिहास के भविष्य जानने के लिये यह तनातनी समझ लेना भी आवश्यक है। अमेरिका और ब्रिटेन का यह झगड़ा बहुत पुराना है। जब कि अमेरिका संसार में नवीन रूप में प्रकट नहीं हुआ था, जे. टी. जेरल्ड नामक एक अमेरिकन ने न्यूयार्क की "करेन्ट हिस्ट्री" नामक एक पत्र में सन् १९२९ ई० में यह उल्लेख किया था कि—

"जिस दिन से अमेरिका ने एक राष्ट्र की भाँति अपना होश सँभाला है, तभी से ब्रिटेन के साथ उसकी समुद्रिक तनातनी चली आ रही है।" यह झगड़ा वास्तव में प्रशान्त महासागर के आधिपत्य का है। आजकल उसपर अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों का जाल बिछा है। लेकिन ब्रिटेन उसपर अधिकांश रूप में स्वामी बनने का दावा करता है। अमेरिका इस दावे को अभी तक स्वीकार नहीं करता और न अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ही उसे मानती है। इसी से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि ब्रिटेन और अमेरिका अगर युद्ध में प्रवृत्त हुए तो यह महायुद्ध प्रशान्त-सागर की छाती पर उसके ही कारण होगा, जिससे यह स्पष्ट है कि इस महान् युद्ध में प्रशान्त सागर के समीपवर्ती सभी देशों के नष्ट हो जाने की संभावना है।

ब्रिटिश उपनिवेशों में ही नहीं वरन अमेरिका ने अपना प्रभाव जर्मनी पर भी बहुत अधिक डाल रक्खा है। आधुनिक

जर्मनी पर उसका पूरा प्रभाव है। अर्थ-शास्त्री डा० कुक् जिन्सकी के मतानुसार सन् १९२८ ई० में ५० से ६० करोड़ डालर तक विदेशियों की पूँजी जर्मनी के कारखानों में लगी हुई थी। इस मूलधन में एक चौथाई भाग अमेरिका का था। सन् १९२८ के सितम्बर में जब राष्ट्र-संघ का अधिवेशन जेनेवा में हुआ तो उसमें जर्मन चांसलर ने साफ कह दिया"—कि जर्मनी कभी भी संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के खिलाफ लड़ने को तैयार न होगा।

इटली के साथ

इटली के ऊपर भी अमेरिका का वही प्रभाव है, जिस तरह जर्मनी के ऊपर। इटली के कारखानों में भी अमेरिका की अपूर्व धनराशि लगी हुई है। पिछले महायुद्ध में इटली मित्र-राष्ट्रों के साथ था और इंगलैण्ड के पक्ष में उसने जर्मनी से लोहा लिया था। परन्तु जब उसने देखा कि इंगलैण्ड और फ्रांस की गुटबन्दी हमलोगों को दबाना चाहती है, तो फौरन् दोनों की चालों को समझकर वह जर्मनी टर्की, और रूस की तरफ झुक गया। जर्मनी से उसकी दृढ़ मित्रता भी हो गई। क्योंकि वर्सेलीज के संधिनामें से दोनों छके बैठे थे। राजनीतिज्ञों का यह स्पष्टीकरण है कि अमेरिका अगर उठेगा तो ब्रिटेन के खिलाफ, क्योंकि यूरोप के अन्य राष्ट्र तो अपनी-अपनी खिचड़ी पकाने में लगे हैं। दूसरे अन्य राष्ट्रों के साथ अमेरिकनों की कोई कशम-कश नहीं है। कशम-कश है तो इङ्गलैण्ड के साथ।

व्यापारिक मामलों में तनातनी

ब्रिटेन और अमेरिका की तनातनी का एक कारण अमेरिका की बढ़ती हुई व्यापारिक शक्ति भी है। सन् १९१४ के महायुद्ध में अमेरिका की व्यापारिक शक्ति बढ़ती ही गई थी। क्योंकि यूरोप के सभी राष्ट्रों ने उस समय अमेरिका से माल लेना आरम्भ कर दिया था। साम्प्रत अमेरिका व्यापारिक उन्नति में ब्रिटेन से सौ कदम आगे है। सन् १९१७ ई० में अमेरिका ने १॥ अरब डालर का माल बाहर भेजा था; और इङ्गलैण्ड ने सिर्फ ६५ करोड़ का ही भेजा। इस निर्यात से पता चलता है कि अमेरिका इङ्गलैण्ड से बाजी मार ले गया। संयुक्त राष्ट्र ने अपनी मंडियों से ब्रिटिश माल निकाल बाहर कर दिया। उसके बाजारों में इङ्गलैण्ड का कच्चा माल भी नहीं खप पाता। भारत, चीन आस्ट्रेलिया और कनाडा के बाजारों में स्वदेशी-मालों के आगे ब्रिटेन की वस्तुयें घृणा से देखी जाने लगीं। अमेरिकन वस्तुएँ मजबूत और टिकाऊ होने के कारण सभी देशों में स्थान पा रही हैं। इतना ही नहीं अमेरिका ने ब्रिटिश-भागों में भी अपनी पूँजी लगाना आरम्भ कर दिया है। दक्षिण अमेरिका में जहाँ के व्यापारों में अंग्रेजों की बहुत सी पूँजी लगी हुई थी, वहाँ अब अमेरिकन महाजनों की पूँजी दिखाई दे रही है।

व्यापार का यह प्रश्न सिर्फ निर्यात के ऊपर ही नहीं है; किन्तु अमेरिका प्रायः सभी धन्धों में ब्रिटेन को दबा देना चाहता है। तेल और रबर बनाने की सभी युक्तियाँ अमेरिका के हाथ में हैं। सिनेमा की फिल्मी कारीगरी और लोहे की मशीनरी बनाने में वह सबसे आगे है। गत २५ वर्षों में तोपों-

और हवाई जहाजों के व्यापार में तथा मोटर कारखानों में उसने अपूर्व धन-संचय किया।

कृषि विभाग

कृषि विभाग में अमेरिका ने क्रांतिकारी महान् परिवर्तन किए। अफीम, रूई, गेहूँ, आदि कच्चे माल की पैदावार बढ़ाने में उसने आश्चर्यजनक उद्योग किये हैं। खेतों को हवाई जहाजों से सीचने की कला पहिले पहल यहीं से निकली। अमेरिका की रूई की पैदावार का मुकाबला करने के लिए अंग्रेजों ने "एम्पायर काटन ग्रोइङ्ग एसोसिएशन" नाम की एक संस्था बहुत दिनों से स्थापित की है, जिसकी सहायता स्वयं सरकार करती है। इसके अतिरिक्त पशुपालन में अमेरिका सबसे आगे है। यहाँ २१ और २२ सेर तक दूध देने वाली गायें हैं। इन गयों के लिये अच्छे-से-अच्छे "डेरीफार्म-गौशालाएँ स्थापित हैं। गायों की नस्ल बढ़ाने के लिये यहाँ के सांड़ संसार भर में प्रसिद्ध हैं। दूध और घी के बढ़ाने में संसार में इस देश का पहिला नंबर है।

अब लीजिये जहाजी कारखानों की बात! ब्रिटेन अमेरिका की जहाजी ताकत का मुकाबला नहीं कर सक्ता। एक बार लंदन टाइम्स ने सन् १९२८ ई० में लिखा था—"समस्त अमेरिका ने अपने साधन ब्रिटिश व्यापारियों के उद्योगधन्धों को नष्ट करने में लगाए हैं।" इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका के प्रभाव से ब्रिटेन स्वयं अपने और अपने उपनिवेशों को बचाने की अधिक चिन्ता में संलग्न है।

महायुद्ध के बाद अमेरिका ने सिर्फ गेहूँ की उपज इतनी अधिक कर ली है कि उसके आगे आस्ट्रेलिया और भारतवर्ष की उपज नहीं के बराबर है। अमेरिकन गेहूँ संसार के सभी देशों में बड़ी तादाद में भेजा जाता है। खाद्य पदार्थों की पैदावार के लिये कई एग्रीकल्चरल सभाएँ और कालेज हैं, जो निम्न विषयर बहुत अधिक ध्यान देते हैं :—

(१) पशुपालन। (२) खाद बनाना। (३) जमीनों की परख। (४) फसलों को रोगों से बचाना। (५) किसान सोसाइटी। (६) ग्राम-सेवा-संघ। (७) खेती के इन्स्पेक्टर्स। (८) खेती के अखबार (९) सिंचाई।

ब्रिटेन की कूटनीति

सन् १९२० ई० में जब महायुद्ध के बाद यूरोप में लूट-खसोट के माल का बटवारा हुआ तो इङ्गलैण्ड ने मेसोपटामिया के मोसल प्रांत के तेलों के कुओं पर आंख गड़ाई। फ्रांस ने भी ईराक और मेसोपटामिया की तरफ आंख उठाई। लेकिन उसका दाव खाली चला गया। अमेरिका जो इस समय दोनों के बीच पंच बना था; इस बटवारे के हिस्से में वही तेल की खानें चाहता था। इसी प्रश्न पर अमेरिका और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में खूब लिखा पढ़ी हुई। लेकिन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अमेरिका की एक भी न चलने दी और सन् १९२१ ई० में ४५ हजार टन की निकासी के तेल के कुएँ अपने अधिकार में कर लिए। बेचारा टर्की यह सब देखता रह गया। अमेरिका इसी पर जल गया; और वह अपनी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के द्वारा संसार को अपने काबू में कर लेने की कोशिश करने लगा। उसने बहुत शीघ्र अपने व्यापार के केन्द्र

हरएक देश में स्थापित कर दिये। इधर अमेरिका की इस तरह वृद्धि देख ब्रिटेन की नींद हराम हो गई। इन्हीं दिनों भारत में राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर शुरू हुआ, जिससे इङ्गलैण्ड का व्यापार चौपट हो गया। सन् १९२३ ई० में लंकाशायर और मैनचेस्टर के कारखानों में ताले पड़ने की नौबत आ गई। भारत के असहयोगआन्दोलन ने लंदन के कपड़े का सारा व्यापार चौपट कर दिया। तब यह सोचा गया कि अमेरिका के साथ कोई समझौता अवश्य किया जावे। साथ ही संसार में उसके बढ़ते हुए व्यापार पर पाबन्दियाँ लगाई जावें।

सन् १९२१ और २२ के बीच वाशिंगटन में एक कान्फ्रेंस की योजना हुई। इस कान्फ्रेंस में ब्रिटेन ने अमेरिका की व्यापारिक शक्ति का लोहा मान लिया। इसलिये अमेरिका को ब्रिटेन के मुकाबले में बराबरी की जल-सेना रखने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसके पहिले उसने जापान को भी अपनी शक्ति पर झुका लिया था। साथ ही समुद्रिक अधिकार भी अधिक मात्रा में स्वीकृत करा लिये थे। परन्तु वाशिंगटन सम्मेलन में ब्रिटेन ने अमेरिका को संधि के शिकंजे में कस लिया। ब्रिटेन अमेरिका को अपने शिकंजे में इसलिये कसना चाहता था, कि उसे फ्रांस से कुछ खटका हो चला था। लेकिन यह मित्रता बहुत दिनों तक कायम न रह सकी और शीघ्र ही खत्म हो गई।

सन् १९२५ ई० में अफीम सम्मेलन हुआ, जिसमें अमेरिका और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों में काफी खटपट हो गई। सन् १९२६ ई० में नौसेना भंग करने के लिये एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में ब्रिटेन और अमेरिका का खुल्लम-खुल्ला

मनमुटाव हो गया। सन् १६२८ ई० में ब्रिटेन में जो क्षणिक संधि-दिवस मनाया गया था, उसमें ब्रिटिश सेनापति फील्ड मार्शल विलियम राबर्टसन् ने कहा थाः—"अमेरिका में जो हो रहा है, उससे साफ़ प्रकट होता है कि वह साम्राज्यवाद के चक्कर में आकर अपनी जल-सेना खूब बढ़ा रहा है। अमेरिका के सैनिक अफ़सर शस्त्र और सेना के संबंध में ऐसे ही दावे पेश किया करते हैं, जैसे कि सन् १६१४ के पूर्व जर्मनी के अफ़सरों द्वारा हमेशा सुनने में आया करते थे।

फ्रांस और ब्रिटेन

सन् १६२१ से सन् १६२७ तक ब्रिटेन अमेरिका को एक उच्चत्तम राष्ट्र मानता रहा। १६२१ से जब ब्रिटेन का व्यापार संसार से उठने लगा, और इन ६ वर्षों के भीतर जब अमेरिका ब्रिटेन की झांसा-पट्टी में नहीं फँसा, तब उसने शीघ्र ही करवट बदली, और उसने फ्रांस की तरफ अपना रुख फेर लिया। सन् १६२१ के भारतीय आन्दोलन से ब्रिटेन का व्यापार बहुत ढीला हो गया था। दूसरे सन् १६२६ ई० में ब्रिटेन में मजदूर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। धड़ाधड़ सार्वजनिक हड़तालें होने लगीं। मजदूरों ने काम पर जाने से इनकार कर दिया। लेकिन ये हड़तालें शीघ्र ही समाप्त कर दी गईं। ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने मजदूर-आन्दोलन पर विजय प्राप्त कर ली। इन्हीं दिनों चीन में घरू-लड़ाई शुरू हो गई। ब्रिटेन ने भी अपने व्यापारिक अड्डों की रक्षा के लिये पल्टनें भेजनी आरम्भ कर दीं। ब्रिटेन ने रूस से संधि तोड़कर फ्रांस से एक नया समझौता शुरू किया। यह समझौता विशेषकर अमेरिका को दबाने के लिये किया गया था। जेनेवा की

कान्फ्रेंस में एक महत्वपूर्ण समझौता किया गया। सम्मेलन ग्रीष्म काल में सन् १९२७ ई० में हुआ था। इस सम्मेलन में फ्रांस के प्रेसीडेण्ट डूमर्ग और परराष्ट्र सचिव मोशिए-ब्रियांद लंदन गए। वहाँ अमेरिका को नीचा दिखाने के लिये मशविरे किए गए। सम्मेलन में यह प्रश्न उठाया गया कि अमेरिका को लड़ाऊ जहाज रखने का अधिकार न दिया जावे। इस विषय पर काफी चखचख हुई। ब्रिटेन के प्रतिनिधि अपनी बात पर अड़े रहे। इस दिद्बाजी से सम्मेलन भंग कर दिया गया। परन्तु ब्रिटेन ने इस मौके को खाली हाथ न जाने दिया, उसने फ्रांस से एक नयी मित्रता स्थापित की। यहीं से फ्रांस और इङ्गलैंड की गुट-बन्दी शुरू हुई।

फ्रांस अब इङ्गलैंड का दायाँ बाजू बनकर उसके सुर के साथ अपना भी सुर मिलाने लगा। फ्रेंच जल-सेनापति मि० लेग्स ने जुलाई सन् १९२८ की एक स्पीच में कहा था—

"ब्रिटेन को दुनिया में सबसे अधिक जल सेना रखने का अधिकार है, उसके मुकाबले में कोई दूसरा उतनी जल-सेना नहीं रख सकता। वह अमेरिका के बेड़े से भी अधिक सेना रख सकता है।" ये चालबाजियाँ यहीं तक सीमित नहीं हैं। ब्रिटेन ने जापान के साथ भी एक समझौता किया था। परन्तु इस समय जो दूसरे नवीन समझौते हुए हैं, उनमें ब्रिटेन-फ्रांस, जर्मनी और इटली की गुटबन्दी है। लेकिन यह गुटबन्दियाँ स्थायी संभवनीय नहीं। दूसरी तरफ अमेरिका यूरोप की इन चाल-बाजियों को चुपचाप देख रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध होने पर अमेरिका किस तरफ जाकर मिलेगा अथवा ब्रिटेन और अमेरिका से युद्ध छिड़ा तो अमेरिका के साथी कौन-कौन होंगे। रहा-सोवियट रूस वह भी अपनी

सैनिक तैयारी में आगे बढ़ रहा है।

कलाग पैक्ट और शांति-सभा

इन शतरंज की चालों को देखते हुए यह पूछा जा सक्ता है कि क्या यही विश्व-शांति की रक्षा के उपाय हैं? अथवा विश्व को बारूद से उड़ा देने के काले कारनामें। फिर लीग आफ नेशन्स और कैलाग पैक्ट जो विश्व-शांति की रक्षा के लिये दुनियाँ पर लादे गए, किस मर्ज की दवा हैं? स्मरण रखना चाहिए कि ये दोनों संस्थाएँ लड़ाई का बिलकुल विरोध नहीं करतीं। बल्कि इनका अभिप्राय यह है कि अपनी आत्म-रक्षार्थ एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लोहा ले सकता है। किन्तु सवाल यह उठता है कि अभी तक ऐसी कितनी लड़ाइयाँ हुईं जो आत्म-रक्षार्थ लड़ी गई हैं। लीग आफ नेशन्स की १० वीं और ११ वीं धारा में प्रत्येक राष्ट्र को सीमित सेना रखने का नियम है। लेकिन ऐसे कितने राष्ट्र हैं जो सीमित सेना रखे हुए हैं। सन् १९१४ का युद्ध क्या आत्म-रक्षार्थ लड़ा गया था अथवा जर्मनी से पुराना बदला चुकाने के लिये। असल मतलब यह है कि हरएक राष्ट्र संसार को हड़प जाने के प्रयत्न में हैं। बीसवीं सदी की प्रबल राजनीति ने अपना यह एक अचल सिद्धान्त बना रक्खा है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। संसार में निर्बल और छोटों को जीने की कोई आवश्यकता नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून, न्याय और सत्यता के ऊपर ही अवलम्बित है। अगर उनमें कुछ स्वार्थ की कालिमा होती है, तो वे निराधार और पंगु हो जाते हैं। उन कानूनों से संसार का न्याय नहीं हो सक्ता, सिवाय एक दूसरे के प्रति भड़कनें के।

अगर अन्तर्राष्ट्रीय कानून मजबूत हुए तो एक स्वतन्त्र राष्ट्र को दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्र के भीतरी मामलों में हाथ डालने के लिये लाचार होना पड़ता है। न्याय और मर्यादा के नाम पर आज जो वातावरण पैदा किया जा रहा है, वह विश्व को लड़ाई के नाम पर विवश करना है।

संसार का भावी युद्ध

यूरोप का बारूदखाना जो महायुद्ध के बाद से तैयार किया जा रहा है, उससे निकट-भविष्य में युद्ध हो जाने की शीघ्र ही आशंका है। इस महायुद्ध की एक आश्चर्य-जनक घटना तो यह है कि जो जातियाँ भावी युद्ध में सफलता पाने की जोरदार तैयारियाँ कर रही हैं, वे शांति की सबसे बड़ी दुहाई दे रही हैं। गत महायुद्ध के समाप्त हो जाने पर लोगों का यह अनुमान था कि यह संसार की आखरी लड़ाई थी और अब संसार में कभी भी युद्ध न होगा। लेकिन सन्धियों के बाद ही युद्ध की जोरदार तैयारियाँ होने लगीं। खून से लथपथ यूरोप का मैदान सूखा भी नहीं था कि युद्ध के बादल चारो ओर से घिरने लगे। यह तो निश्चयात्मक बात है कि यूरोप में युद्ध अवश्य होगा। अभी युद्ध के बड़े बड़े ग्रह तो किसी भाँति टाल दिये गए हैं। परन्तु युद्ध यूरोप तक ही सीमित नहीं रह जायगा, समस्त एशिया और अमेरिका तक इसकी आग भड़क उठेगी।

इस युद्ध का सबसे महान् कारण होगा, सत्ता और शक्ति का आवेश तथा बदला लेने की भावना। जिन शक्तियों ने महायुद्ध के बाद अपनी जमीनें गवाँ डाली थीं, अब उन्होंने अपनी गिद्धदृष्टि दूसरे कमजोर राष्ट्रों, समुद्री अड्डों तथा

आसपास की जमीनों पर लगा रखी हैं। एक ओर वे जातियाँ हैं जो अपना सर्वस्व गँवाकर हाथ-मलकर शक्ति शाली राष्ट्रों के कारनामों पर गरम आहें ले रही हैं। वे मौके की ताक में हैं, कि अवसर आते ही हम भी अपना बदला लें। इस तरह युद्ध का मैदान बनेगा यूरोप ही। जो देश किसी युद्ध में विजयी होता है, उसमें सार्वभौम-सत्ता का एक प्रबल नशा आ जाता है; जिसके आगे वे दुनियाँ को हेय और कम-जोर समझने लगते हैं। जो सम्पत्ति उनके हाथ में आ जाती है, चाहे वह न्याय से आई हो, चाहे अन्याय से; वे उसे सदा अपनी बनाए रखना चाहते हैं। इस सम्पत्ति को सदा अपने अधिकार में रखने के लिए एक अपूर्व मन्त्र की शरण लेनी पड़ती है, और यह मन्त्र है—"सदा शांति"—संसार को शान्ति की दुहाई देकर, शान्ति के कानून बनाकर, विजयी शक्तियाँ प्राप्त-संपत्ति का अच्छी तरह उपभोग करती हैं। इन विजयी देशों में ब्रिटेन और फ्रांस मुख्य हैं। इन्हीं के प्रयत्न से राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई, जिससे संसार को भरोसा हो गया था, कि इङ्गलैंड और फ्रांस युद्ध नहीं चाहते। इसके अलावा रूमानियाँ—पोलैंड-जेकोस्लोवाकिया-आदि और भी छोटे-छोटे राज्य, जिनकी शक्ति अभी तक मजबूत नहीं हो सकी थी, इस शान्ति से फायदा उठा रहे थे। परन्तु भावी युद्ध से उन्हें कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं। इन देशों में भिन्न २ जातियाँ बसती हैं। अकेले पोलैंड के २ करोड़ ९० लाख निवासियों में पोल्स लोग केवल एक करोड़ ही हैं, बाकी एक करोड़ ९० लाख—दीगर जातियाँ हैं, जो बाहर से आकर बसी हैं।

उपरोक्त देश, धन और जन-शक्ति में कमजोर होने के

कारण युद्धों से सदा दूर रहते हैं। ये छोटे छोटे राष्ट्र हैं, जो सदा शान्ति की छत्र-छाया में रहना अधिक पसन्द करते हैं। महायुद्ध में जर्मनी ने बेलजियम को ७ दिन में ही मटिया-मेट कर दिया था। कुछ राष्ट्र ऐसे भी हैं जो बदला लेने के भावों से अब भी भरे हैं।

इन सब राष्ट्रों में हंगरी का नम्बर सबसे पहिले है, जिसकी तमाम ताकत, जर और जमीन गए महायुद्ध में नष्ट हो गई थी। ७० फीसदी जमीन और ६५ फीसदी जन संख्या से उसे हाथ धोना पड़ा था। हंगरी की ३० लाख आबादी बिदेशियों की हुकूमत में चली गई थी। हंगरी फिर से अपनी खोई हुई आबादी को प्राप्त करने के लिये उत्सुक है। जिन सन्धियों की बदौलत उसकी यह दशा हुई, उन सन्धियों को मिटा देने के लिए वह आज तत्पर है। हंगेरियन बड़ी तीव्र गति से सैनिक संगठन में आगे बढ़ रहे हैं। आस्ट्रिया में नाजी प्रभाव होने से उसकी राजनीति में अन्तर अवश्य आ गया होगा। लेकिन वह अपनी छिनी हुई स्वतन्त्रता को पुनः वापस लेगा।

बालकान-प्रदेश

बालकान प्रदेशों का भी यही हाल है। मेसोडोनिया बालकान प्रायद्वीप का मुख्य प्रदेश है। इस प्रदेश की बहुत सी भूमि ग्रीस और बलगेरिया के बीच बँट गई। इस बटवारे से मेसिडोनिया भी बहुत असन्तुष्ट है। वह अपनी छिनी हुई सम्पत्ति को वापस लेना अपना कर्तव्य समझता है। आजादी की लड़ाई लड़ने के लिये उन्होंने बहुत दिनों से एक क्रांतिकारी संस्था को जन्म दे रखा है, जिसका उद्देश गुप्त और प्रकट-

रूप से शत्रुदल के लोगों की हत्याएँ करना है। बहुत सी बलगेरियन जनता भी मेसिडोनिया के पक्ष में कार्य कर रही है। भावी महायुद्ध से लाभ उठाने के लिये मेसोडोनिया भी तैयार है।

इटली

इन सबके बीच में इटली एक प्रमुख राष्ट्र है, जिसे गत महायुद्ध में अधिक लाभ उठाने का अवसर नहीं मिला। इटली को जितनी भूमि मिलनी चाहिए थी, उतनी नहीं मिली। यद्यपि उसे अब अबीसीनिया मिल गया है, फिर भी उसकी रक्त-पिपासा शांत नहीं हुई है। वह चाहता है कि दुनिया में जो दर्जा ब्रिटेन और फ्रांस को प्राप्त है, वही दर्जा हमें प्राप्त हो जाय। यूगोस्लेविया का कुछ हिस्सा जो उसे मिलना चाहिये था, वह उसे नहीं दिया गया। यदि युद्ध छिड़ेगा तो इटली पहला देश होगा, जो युद्ध के मैदान में कूद पड़ेगा।

जर्मनी

गत १७ वर्षों में जर्मनी ने अपने देश में जो महान् परिवर्तन किए हैं, वे संसार के आगे नवीन उदाहरण हैं। जर्मन लोग बड़ी रफ्तार से आगे बढ़ रहे हैं। पिछले महायुद्ध में जो सन्धि हुई थी, उसमें जर्मनी की आबादी का एक बड़ा हिस्सा उससे अलग कर दिया गया था। ६ लाख ३५ हजार आबादी का जर्मन प्रदेश जेकोस्लोवाकिया का वह प्रान्त जिसमें ३ लाख ३५ हजार जर्मनों की आबादी है, पुनः १९३८ में वापस ले लिया गया। इसे सूडेटन-आन्दोलन कहते हैं। ब्रिटेन और फ्रांस ने इसे जर्मनी को वापस दिलाने में यथाशक्ति सहायता

दी। मि० चेम्बरलेन ने इस समस्या को हल करके विश्व-शान्ति का सेहरा अपने सर पर बाँध लिया। आस्ट्रिया, जर्मनी का सम्मिलित राष्ट्र बन कर संसार में अपने प्रभाव का सिक्का जमा रहा है।

रूस

अब अकेला रूस रह गया है। वह युद्ध के लिये तैयार ही है। सदियों से वह साम्राज्यवादी और पूँजीपतियों से सताया गया। वह इन राष्ट्रों की बदौलत न तो व्यापार कर सकता है, और न अपने उद्योग धन्धे ही आगे बढ़ाने में स्वतंत्र है। लेनिन के बाद स्टेलिन की सरकार रूस को साम्राज्यवादी और पूँजीवाद के विरुद्ध कमर कस कर लड़ने के लिये तैयार कर रही है।

हंगरी, मेसिडोनिया, जर्मनी, इटली, रूस आदि प्रदेश युद्ध के पक्ष में हैं। संसारव्यापी युद्ध की आवाज इन्हीं देशों से आ रही है।

युद्ध की सम्भावना जर्मनी की तरफ से है, क्योंकि अपनी छिनी हुई सम्पत्ति को वापस लेने और संसार में अपनी शक्ति का प्रभाव जमाने के लिये जर्मनी सबसे आगे है। सूडेटन प्रांत को लेकर वह फ्रांस और ब्रिटेन से भी अपने उपनिवेश माँगने लगा है। अगर ब्रिटेन और फ्रांस ने उसकी माँगों का ठुकरा दिया, तो लोहा बजाने में फिर देरी न होगी।

